पंजाब:
सैनिक कार्रवाई

असलियत क्या है?

सच्चिदानंद सिन्हा
जसवीर सिंह
सुनील
जी॰के॰ सी॰ रेड्डी

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

11/H

Prof. Dr. Harnam Singh Shan
Principal Project Investigator
U.G.C. Research Project on Sikhism
605, Sector 16 Chandigarh.

579

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

पंजाब :
सैनिक कार्रवाई
असलियत क्या है !

(पंजाब-संकट का सही मूल्यांकन)

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

पंजाब समस्या पर हमारे अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

- **Army Action In Punjab** : Prelude & Aftermath — Sachchidanand Sinha, Jsvir Singh, Sunil, G. K. C. Reddy

- **Punjab Tangle** : The different Perspectives
  - N. S. Saxena
  - Retd Lt. Gen. J. S. Aurora
  - Khuswant Singh
  - Harkishan Singh Surjeet
  - Pran Chopra
  - Dr. Maheep Singh
  - Subramaniam Sawamy

- पंजाब : भाषा समस्या से सैनिक कार्रवाई तक ० डॉ० महीपसिंह

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

पंजाब :
सैनिक कार्रवाई
असलियत क्या है !

सच्चिदानंद सिन्हा
जसवीर सिंह
सुनील
जी० के० सी० रेड्डी

अमृत पब्लिशिंग हाउस
नयी दिल्ली

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

© समता एरा

प्रथम संस्करण : 1985

प्रकाशक : अमृत पब्लिशिंग हाउस
एच-109, शिवाजी पार्क
नयी दिल्ली-110026

मूल्य : सजिल्द—30-00 रु०
पेपर बैक—10-00 रु०

मुद्रक : कुलीग प्रिंटर्स, हरी नगर, नयी दिल्ली

आवरण : हरिप्रकाश त्यागी

Punjab : Sainik Karvahi Asliyat Kaya Hai
Price : Hard Bound—Rs. 30-00
Paper Back—Rs. 10-00
First Edition : 1985

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

प्राक्कथन

देश की आजादी के बाद किसी घटना ने राष्ट्र के धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक आधार को इतना नहीं हिलाया, जितना कि हाल की पंजाब की घटनाओं ने हिलाया है। हमारी राष्ट्रीय मानसिकता में इन घटनाओं से कुछ वैसी ही दरार पड़ गयी है जैसी कि आजादी के पहले के कुछ सालों में पड़ गई थी और जिसने अंततः देश का विभाजन किया और पाकिस्तान बनाया।

सारा राष्ट्र आज पंजाब की स्थिति से चिंतित है। वह यह जानना और समझना चाहता है कि क्या बात है कि ऐसा संकट पैदा हो गया! क्या गलतियां हुईं? कौन लोग और कौन से कारण इसके लिए जिम्मेवार हैं? लेकिन सरकार इस बात पर तुली हुई है कि साधारण आदमी यह न जान पाए कि सच्चाई क्या है। वह तो अपने एकतरफा प्रचार को ही जानकारी के रूप में पेश कर रही है। प्रेस सेंसरशिप लगाकर, सैनिक कार्रवाई के दौरान पूरे पंजाब पर कर्फ्यू थोपकर और पत्रकारों और आम आदमी की आवाजाही पर पूर्ण प्रतिबंध लगाकर सरकार ने यह कोशिश की कि सही जानकारी लोगों तक न पहुंच पाए। लेकिन क्या सच्चाई छुप सकती है? पंजाब में उन भयावह दिनों में क्या हुआ, कैसे हुआ और क्यों हुआ इसकी जानकारी धीरे-धीरे बाहर आ रही है।

इस पुस्तक में पंजाब की घटनाओं की सच्चाई को प्रकट करने के उद्देश्य से विभिन्न सूत्रों से तथ्य जुटाये हैं। इतने तथ्य रहस्यों और सरकारी प्रतिबंधों के नीचे दबे पड़े हैं कि इस पुस्तक में पेश जानकारी शायद उनका थोड़ा-सा हिस्सा ही होगी। लेकिन सरकारी प्रचार के झूठ को पकड़ने के लिए वह काफी है।

लेकिन इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य सिर्फ पंजाब की घटनाओं के बारे में तथ्यों को पेश करना उतना नहीं है, जितना कि उनके कारणों को ढूंढ़ना और उनका निराकरण करना है। इसके लिए पंजाब और सिखों और अकालियों के इतिहास की एक संक्षिप्त रूपरेखा देना जरूरी है। इसके बाद के अध्याय में पंजाब के संकट के पीछे काम कर रही भारतीय समाज की ताकतों और कमजोरियों का विश्लेषण

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

किया गया है तथा केन्द्र की नीतियों की भी कलाई खोली है। इसके बाद के अध्याय में सैनिक कार्रवाई के दौरान क्या हुआ, इसका विवरण विभिन्न स्रोतों के आधार पर दिया गया है। मानवाधिकारों का जो खुलेआम उल्लंघन हुआ, वह एक अलग अध्याय में बताया गया है। श्वेत पत्र के माध्यम से सरकार ने जो लीपापोती की कोशिश की, उसे एक अध्याय में बेनकाब किया गया है।

इस पुस्तक के अंतिम भाग में कुछ बुनियादी सवालों को उठाया गया है। भारतीय राष्ट्र और लोकतांत्रिक व्यवस्था में सेना के बढ़ते हुए हस्तक्षेप का जो खतरा पैदा हुआ है, उसे अन्य देशों के अनुभवों के प्रकाश में देखा गया है। पंजाब के विवाद का एक बड़ा हिस्सा धर्म और राजनीति के परस्पर संबंधों से जुड़ा है, इसलिए पुस्तक में धर्म निरपेक्षता और राज्य सत्ता द्वारा धर्म में हस्तक्षेप के बारे में भी एक अध्याय है। पंजाब का बहाना लेकर सरकार द्वारा बनाए गए नए दमनकारी कानूनों के परिणामों पर एक अध्याय में विचार किया गया है। अंत में परिशिष्टों में कुछ दस्तावेज़ दिए गए हैं जो पंजाब की स्थिति को समझने में सहायक होंगे।

हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक मौजूदा उत्तेजना के माहौल में लोगों को एक नए सिरे से सोचने और समझने में सहायक होगी।

हिन्दी में इस पुस्तक को निकालने का मुख्य श्रेय श्री अशोक सेकसरिया को है। उनके अथक श्रम और सहयोग के बिना इस पुस्तक का निकलना संभव नहीं होता।

—समता एरा संपादक मंडल

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

क्रम

1.	ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	9
2.	पंजाब-संकट के मूल कारण	20
3.	'बहादुर' फौज की करतूतें	38
4.	सैनिक कार्रवाई और मानव अधिकार	44
5.	भ्रामक श्वेत पत्र	54
6.	सेना के इस्तेमाल का खतरा	62
7.	धर्म निरपेक्षता बनाम धर्म में सरकार का हस्तक्षेप	69
8.	काले कानून	79
9.	समाचार पत्रों और विरोधी दलों की भूमिका	87
10.	आगे की चुनौतियां	98
	सहायक सन्दर्भ सूची	101
	परिशिष्ट—आनन्दपुर साहब प्रस्ताव	105

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

1

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पांच नदियों के पानी से सिंचित होने वाली पंजाब की धरती एक बार फिर खून से सिंचित हुई है। लेकिन पंजाब के दुर्दम्य निवासियों के लिए शायद यह पहला मौका नहीं जब उन्हें ऐसे हादसे से गुजरना पड़ा है। पंजाब भारत पर आक्रमण करने वाले हमलावरों का प्रवेशद्वार रहा है। हर आक्रमण पंजाब के लोगों के लिए लूट-मार और अत्याचार लेकर आया। सिकंदर, महमूद गजनवी, मुहम्मद गौरी, बाबर, तैमूर, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली जैसे हमलावरों के आक्रमण पंजाब को झेलने पड़े। दूसरी ओर पंजाब के बहादुर और स्वाधीनता-प्रेमी निवासियों को देशी शासकों के कोप और आतंक का भी शिकार होना पड़ा। ऐसी परिस्थितियों में सिख धर्म और उसकी परंपराओं का एक विशेष ढंग से उदय और विकास हुआ।

पंजाब के मौजूदा संकट का विश्लेषण करने से पहले पंजाब और सिखों की इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना जरूरी है। अकाल तख्त, पंज पियारे, कृपाण और शस्त्र रखने की परम्परा, अकाली मोरचे, शहीदी जत्था, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी, पंजाबी सूबे की मांग—सभी का एक ऐतिहासिक संदर्भ है और उनके पीछे धार्मिक और राजनैतिक ज्यादतियों के खिलाफ सिखों के अनवरत संघर्ष की कहानियां छिपी पड़ी हैं। उदाहरण के लिए सिखों की सर्वोच्च संस्था—अकाल तख्त—पर इसके पहले दो बार चढ़ाई की गई और उसे तहस-नहस किया गया। अठारहवीं शताब्दी के तीसरे दशक में मुगल बादशाह ने स्वर्ण मंदिर को अपने अधीन कर उसमें सिखों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया था और बहुत सारे सिख उस प्रतिबन्ध को तोड़ते हुए मारे गये थे। सन् 1738 में तत्कालीन शासकों ने हरमंदिर साहिब के मुख्य ग्रंथी भाई मनी सिंह को उनके हर जोड़ से काट-काट कर शहीद किया था। 1762 में अहमदशाह अब्दाली ने दस हजार सिखों का कत्लेआम करने के बाद स्वर्ण मंदिर को बारूद से उड़ाने और सरोवर को हड्डियों, खून और मलवे से भरने का आदेश दिया था। जून, 1984

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

में केन्द्र सरकार की फौज ने जो कुछ किया, वह सिखों को बरबस उस रक्तरंजित इतिहास की याद दिला देता है। और इसी से समझा जा सकता है कि सिख-मन इतना आहत और क्षुब्ध क्यों है ?

बाबर ने सोलहवीं सदी में जब भारत पर आक्रमण किया, तब भारत का राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन गिरावट के एक दौर से गुजर रहा था। एक तरफ छोटे-छोटे राजा अपनी प्रजा का शोषण और अत्याचार करने में लगे थे जो दूसरी तरफ सामाजिक जीवन में ऊंची जाति के दम्भ वाले हिन्दू, दलितों और नीची जातियों के लोगों के साथ पशुवत् व्यवहार कर रहे थे। धार्मिक जीवन भी आडम्बर और कर्मकाण्ड के बोझ से दबा हुआ था। ऐसे समय में देश में धार्मिक पुनर्जागरण की लहर आई और भक्ति आंदोलन के संतों ने सामाजिक बुराइयों और धार्मिक विकृतियों के खिलाफ आवाज उठाई। गुरु नानक (1469-1539) का आंदोलन और सिख पंथ का जन्म इन्हीं परिस्थितियों की उपज थी।

गुरु नानक ने पहला काम जो किया, वह था सामाजिक ऊंच-नीच की संस्थाओं पर आक्रमण करना और एक ऐसे समुदाय की स्थापना करना जहां सभी तरह के लोग जात-पांत, ऊंच-नीच, अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष के भेद-भाव को भुलाकर इकट्ठा हो सकें। गुरु नानक ने कहा कि वे समाज के एकदम नीचे के दलित और गरीब लोगों के साथ हैं—

नीचा अंदर नीच जात नीची हूं अत नीच,
नानक तिनके संग साथ बडियां सिऊ क्या रीस।

जाति-प्रथा का विरोध करते हुए उन्होंने जोर देकर कहा कि किसी से उसकी जाति पूछना निरर्थक है, आदमी अपने कार्यों से जाना जाता है, जाति से नहीं—

जात-पांत नहीं पूछिये सच घर लेह बसाय,
सा जात सा पात है जैसे करम कमाय।

गुरु नानक द्वारा सामाजिक गैरबराबरी के खिलाफ छेड़ा गया यह जिहाद आगे चलकर सिख परंपराओं का अंग बन गया। संगत (शिष्यों या सिखों की आम सभा) और पंगत (भोजन की पंक्ति या 'लंगर')—सिख समुदाय की दो ऐसी परंपराएं बनीं, जो सभी धर्म, जाति, वर्ग और लिंग के लोगों के लिए खुली थीं और जो सामाजिक समानता का प्रतीक बनीं। इसी के साथ शारीरिक श्रम की गरिमा को भी सिख समुदाय में प्रमुख स्थान दिया गया। गुरुद्वारों की 'कार-सेवा' (निर्माण-कार्य) में सभी प्रकार के सिखों द्वारा स्वेच्छा से हिस्सा लेने और गुरुद्वारे के लंगर में सभी के द्वारा खाना बनाने, परोसने और जूठे बर्तन धोने में शारीरिक श्रम की महत्ता और सामाजिक बराबरी को स्थापित किया गया।

तीसरे गुर अमर दास (1552-1574) ने परदा-प्रथा और सती-प्रथा का विरोध किया और औरतों की मुक्ति की वकालत की। पांचवें गुरु अर्जुन (1581-

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

1606) के समय 'गुरु ग्रंथ साहिब' की रचना हुई जिसमें गुरु नानक तथा अन्य गुरुओं के अलावा तत्कालीन दलित एवं सूफी संतों (कबीर, दादू, रैदास, फरीद आदि) के संदेशों और हिन्दुओं और मुसलमानों के धर्मग्रंथों की अच्छी बातों का भी संकलन किया गया। सबसे बड़ी बात यह थी कि यह संकलन बोलचाल की भाषा में था। गुरु गोबिन्द सिंह (1675-1708) ने जब सिखों को सशस्त्र रूप से संगठित किया तो जिन पहले पांच सिखों को दीक्षित किया वे पांचों शूद्र जातियों से थे—जाट, जुलाहा, चमार, मल्लाह और नाई। ये 'पंज पियारे' सिखों के सर्वोच्च प्रवक्ता माने गये और उसके बाद स्वयं गुरु गोबिन्द सिंह ने उनके सामने झुककर प्रार्थना की कि वे अब उन्हें (गुरु गोबिन्द सिंह को) दीक्षित करें। तभी से गुरु की परम्परा खत्म हो गई और पंज पियारों की परम्परा शुरू हुई।

इस प्रकार तत्कालीन समाज के दलितों और शोषितों के समूह सिख समुदाय के आधार बने। लेकिन सिख धर्म की खूबी यह थी कि उसने लोगों की चेतना को आध्यात्मिक और सामाजिक क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रखा, उन्हें राजनैतिक उत्पीड़न और अत्याचार के खिलाफ भी संगठित किया। गुरु नानक ने तत्कालीन राजाओं की आलोचना करते हुए कहा कि राजा शेर की तरह और उनके मुसाहिब कुत्तों की तरह व्यवहार कर रहे हैं और दोनों ही गरीब जनता की बोटियां नोच रहे हैं—'राजे सिंह मुकद्दम कत्ते'। शासकों के अत्याचारों के विरुद्ध लोगों को संगठित होने का आह्वान करने के कारण सिख गुरु तत्कालीन राजाओं की आंखों की किरकिरी बने और उन पर अमानवीय अत्याचार किये गये। पांचवें गुरु अर्जुन देव को सन् 1606 में मुगल बादशाह जहांगीर के आदेशों पर गरम तवे पर बिठा कर ऊपर से नंगे शरीर पर गरम बालू डालकर यातनाएं दे-देकर मार डाला गया। नवें गुरु तेगबहादुर को कश्मीरी हिन्दुओं और सूफी संतों का साथ देने के आरोप में औरंगजेब ने पकड़ कर बन्द कर दिया। इसके बाद उन्हें धर्म-परिवर्तन करने से इन्कार करने पर बहुत दिनों तक लोहे के पिंजड़े में रखा गया और अन्त में उनका सिर काट दिया गया। निरन्तर अत्याचारों ने आखिरकार सिखों को सशस्त्र संघर्ष के लिए संगठित होने के लिए मजबूर किया और गुरु गोबिन्द सिंह ने उन्हें दीक्षित करने के बाद 'सिंह' की उपाधि दी—वे सिंह की तरह वीर हैं। उनके दीक्षित वीरों के लिए पांच निशानियां—केश, कंघा, कच्छा, कड़ा और कृपाण—धारण करना अनिवार्य कर दिया गया। गुरु गोबिन्द सिंह के नेतृत्व में सिखों ने अनेक लड़ाइयां लड़ीं। गुरु गोबिन्द सिंह के दो बेटे लड़ाइयों में लड़ते हुए मारे गए और दो—छः और आठ वर्ष की उम्र के—धोखे से पकड़े जाने पर सरहिंद के सूबेदार द्वारा जिन्दा दीवार में चिन दिए गए।

इसके बाद का सिखों का इतिहास निरंतर अत्याचारों और जुल्मों के खिलाफ संघर्ष का इतिहास है। कम से कम दो बार मुगल बादशाहों ने हुक्म दिया कि जो भी

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

सिख दिखें उसका सर कलम करके ले आओ और इस दुनिया से सिखों का नामो-निशान मिटा दो। 10 दिसम्बर, 1710 को बादशाह बहादुरशाह ने ऐसा फरमान निकाला था, फिर बादशाह फर्रुखसियर ने सिखों के आम कत्लेआम का आदेश देते हुए जिन्दा या मृत सिख के लिए इनाम की घोषणा की थी। 1746 में लाहौर के सूबेदार याह्या खान द्वारा कुछ ही दिनों के भीतर कई हजार सिखों की हत्या की गई। यह सिख इतिहास में पहला 'घलुघारा' (हत्याकाण्ड) के रूप में जाना जाता है। दूसरा बड़ा घलुघारा 1762 में अहमदशाह अब्दाली के हाथों हुआ जिसमें लगभग 10 हजार सिखों, जिनमें अनेक स्त्री, बच्चे और बूढ़े व्यक्ति थे, को मौत के घाट उतार दिया गया। अत्याचारों की इस कड़ी में कुछ राहत का मौका तब आया जब सिख मिसलों (रियासतों) के समय और फिर महाराजा रणजीतसिंह (1799-1839) के समय सिखों ने राजनैतिक और सैनिक सफलता प्राप्त की। इतने अत्याचारों को झेलने के बाद भी सिखों के मन में मुसलमानों के प्रति कोई कटुता नहीं थी। महाराजा रणजीतसिंह के अधिकारियों में हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। रणजीतसिंह के वजीर फकीर अजीजुद्दीन, निजी चिकित्सक फकीर नुरुद्दीन राजधानी के पुलिस प्रशासन का अफसर, तोपखाने का अधिकारी, गोविन्दगढ़ के किले का नायक मुसलमान थे। तो दरबार का एक महत्त्वपूर्ण मंत्री दीनानाथ और महाराजा के महल का अधिकारी जमादार खुशहाल सिंह हिन्दू थे।

लेकिन सिख साम्राज्य अंग्रेजों की चालों और कूटनीति के आगे नहीं ठहर सका और रणजीतसिंह की मृत्यु के कुछ ही सालों बाद अंग्रेजों ने उस पर कब्जा कर लिया। 1845-46 में ब्रिटिश सेना ने सतलज पार करके सिख फौजों को हराया, और शिशु-महाराजा दलीप सिंह के संरक्षक बनकर अंग्रेज स्वयं राज चलाने लगे। 1849 में दलीप सिंह को भी गद्दी से हटाकर इंग्लैण्ड भेज दिया गया।

सिखों के इस दुर्भाग्यपूर्ण अध्याय में उन्हें कई लोगों ने धोखा दिया जिसमें पूरबिया (अर्थात् पंजाब से पूरब—उत्तर भारत—के लोग) और डोगरा सरदार आदि थे। जब 1857 में भारत के अन्य भागों में ब्रिटिश आधिपत्य के खिलाफ पहला विद्रोह हुआ तो ये जख्म ताजा थे। विद्रोही राजाओं ने भी सिखों को साथ लेने की चेष्टा नहीं की। फिर मुगल बादशाह बहादुरशाह के नेतृत्व को सिखों का समर्थन मिलना मुश्किल था क्योंकि वे दो शताब्दियों तक मुगल अत्याचारों के खिलाफ लड़ते रहे थे। शायद यही कारण थे कि 1857 के विद्रोह के वक्त सिख तटस्थ रहे या उन्होंने ब्रिटिश फौजों का साथ दिया।

लेकिन सिखों और पंजाब के लोगों ने ब्रिटिश आधिपत्य को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया और समय-समय पर आंदोलन होते रहे। 1907 में ब्रिटिश

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

सरकार के कोलोनी बिल के खिलाफ लयालपुर जिले के किसानों का आंदोलन उठ खड़ा हुआ। सरदार अजीत सिंह और लाला लाजपत राय ने नेतृत्व संभाला और अंततः सरकार को बिल वापस लेना पड़ा। फिर गदर पार्टी कायम हुई और एक सशस्त्र क्रांति की योजना बनी जो सफल नहीं हो पायी। 1914 में दिल्ली के गुरुद्वारा रकाबगंज की एक बाहरी दीवार गिरा दी गयी ताकि वाइसराय के लिए एक नया लाज बनाया जा सके। रकाबगंज के साथ सिखों के नवें गुरु तेगबहादुर की स्मृतियां जुड़ी हैं क्योंकि सिर काटे जाने के बाद 1675 में यहीं उनका अंतिम संस्कार किया गया था। अतः सिखों का एक बड़ा आंदोलन पैदा हो गया। 1914-18 का विश्वयुद्ध शुरू हो जाने से यह आंदोलन स्थगित कर दिया गया लेकिन युद्ध के बाद यह फिर शुरू हुआ। सरकार ने सिखों की भावनाओं का सम्मान करने से इंकार कर दिया तो सिखों ने गिरी हुई दीवार को फिर से बनाने और सरकार के कोप को झेलने के लिए एक शहीदी जत्था भेजने का निर्णय किया। किन्तु यह विस्फोटक स्थिति टल गई क्योंकि सरकार ने स्थिति की गम्भीरता को समझा और नाभा के महाराजा रिपुदमन सिंह ने मध्यस्थता करके सरकार की ओर से जत्थे के दिल्ली पहुंचने से पहले ही दीवार को पुनः बनवाने की व्यवस्था की। 'शहीदी जत्थे' की तकनीक की यह सफलता महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि इसने सिखों के इतिहास में अहिंसात्मक आंदोलन का एक नया अध्याय शुरू किया और यह आगे आने वाले गुरुद्वारा मुक्ति आंदोलन का मुख्य आधार बनी। यह आधुनिक भारत में सत्याग्रह के प्रारम्भिक प्रयोगों में से एक था।

1919 में जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड ने पूरे देश को हिला दिया और जन असंतोष की आग को भड़का दिया। सिख इस बात से भी घोर असंतुष्ट थे कि उनके गुरुद्वारों में ब्रिटिश सरकार द्वारा नामजद भ्रष्ट महन्त और प्रबन्धक बैठे थे जो तमाम तरह के भ्रष्ट आचरण करते थे, ब्रिटिश सरकार की मिजाजपुर्सी करते थे और सरकार के खिलाफ लड़ने वाले व्यक्तियों की आलोचना करते थे। इतिहासकार मोहिन्दर सिंह लिखते हैं, "ब्रिटिश सरकार ने अपने द्वारा नियुक्त स्वर्ण मंदिर के सरबराह से काम गाटा मारू के सिख नेताओं की निन्दा करवायी। इसके पहले उसने सिख तख्तों से सिंह सभा आंदोलन और फिर गदर पार्टी के लोगों की निंदा में हुक्मनामे जारी करवाये थे।"[1]

1. मोहिन्दर सिंह, 'दि अकाली मूवमेंट', मैकमिलन इण्डिया, नोट 25, पृ० 158। मोहिन्दर सिंह ने ही एक रोचक घटना का वर्णन किया है जो उस वक्त सरकार द्वारा नामजद गुरुद्वारा के ग्रंथियों के गिरावट और उनके द्वारा ब्रिटिश सरकार की खुशामद व चाटुकारिता की पराकाष्ठा है। वह घटना जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड के तुरन्त बाद स्वर्ण मंदिर के (ब्रिटिश-नियुक्त) सरबराह द्वारा जनरल डायर को सरोपा भेंट किये जाने (सम्मानित करने) की है। मोहिन्दर सिंह लिखते हैं :

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

शीघ्र ही गुरुद्वारों के भ्रष्ट और सरकार के पिट्ठू महंतों और प्रबन्धकों से मुक्त करने के लिए एक सशक्त आंदोलन उठ खड़ा हुआ। पहली सफलता सियालकोट में 5 अक्तूबर, 1920 को मिली। उत्साहित होकर सिखों ने अन्य गुरुद्वारों को भी मुक्त करने के लिए शांतिपूर्ण स्वयंसेवकों के जत्थे भेजने शुरू कर दिये और उनके प्रबन्ध के लिए शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी का गठन हुआ। आंदोलनकारी 'अकाली' कहलाने लगे और इसी आंदोलन के दौरान अकाली दल का जन्म हुआ। अमृतसर, पंजा साहिब और अन्य कई स्थानों पर पर गुरुद्वारों को अकालियों ने पुराने महंतों से मुक्त कराया। अकालियों की इस सफलता से सरकार घबरायी और उसे लगा कि देश के अन्य भागों में उठ रही स्वाधीनता की आवाज से अकाली आंदोलन जुड़ गया तो ब्रिटिश साम्राज्य बहुत बड़े खतरे में पड़ जाएगा। अतः अकाली आंदोलन से 'सख्ती' से निबटने का निर्णय किया।

लाहौर डिविजन के कमिश्नर श्री किंग ने ग्रंथियों को पत्र लिखकर कहा कि वे आन्दोलनकारियों का प्रतिरोध करें। तरन तारान में अकाली स्वयंसेवकों पर हमला किया गया और दो स्वयंसेवक मारे गए। 20 फरवरी, 1921 को ननकाना साहिब में सबसे खूनी वाकया हुआ। गुरु नानक के इस जन्म-स्थान में महंत नारायण दास ने अकाली जत्थे के 130 निहत्थे और अहिंसक स्वयंसेवकों को बन्दूकों और फरसों के द्वारा कत्ल करवा दिया। उनकी लाशों को एक ढेर में इकट्ठा करके मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी गयी। इसकी खबर फैलते ही सब जगह तहलका मच गया। आखिरकार सरकार को गुरुद्वारे का नियंत्रण शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी को सौंपने के लिए मजबूर होना पड़ा।

लेकिन सरकार दमन और हस्तक्षेप पर उतारू थी। नवम्बर 1921 में सरकार ने स्वर्ण मन्दिर की चाबियां उसके प्रबंधक से अपने कब्जे में ले लीं और

"स्वर्ण मंदिर के सरबराह अरूर सिंह और अन्य ग्रंथियों तथा जनरल डायर के बीच निम्न वार्तालाप हुआ :

"साहेब, उन्होंने कहा, "आपको निकलसेयन साहेब की तरह सिख हो जाना चाहिए।"

जनरल डायर ने उन्हें सम्मान के लिए धन्यवाद दिया, लेकिन आपत्ति की कि एक ब्रिटिश आफिसर होने के नाते वे अपने केश नहीं बढ़ा सकते।

अरूर सिंह ने हंसते हुए कहा, "कोई बात नहीं, हम आपको इस बारे में छूट दे देंगे।"

जनरल डायर ने दूसरी आपत्ति की, "लेकिन मैं सिगरेट पीना तो छोड़ नहीं सकता।"

इस पर ग्रंथियों ने कहा, "ठीक है, हम आपको धीरे-धीरे छोड़ने की इजाजत दे देंगे।"

जनरल ने कहा, "मैं साल में एक सिगरेट कम करने की दर से सिगरेट छोड़ने का वचन देता हूं।"

जनरल डायर के जीवनी-लेखक के अनुसार ग्रंथियों ने इस पर जनरल डायर और कैप्टन ब्रिग्स को दीक्षा देने का नाटक किया और उन्हें पांचों 'क' से सज्जित किया। इस तरह जनरल डायर और कैप्टन ब्रिग्स सिख बन गए।" (वही, पृष्ठ 14)

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

इसका विरोध करने वाले अकाली नेताओं और कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया। पूरे पंजाब में इसका जबर्दस्त विरोध हुआ, सभाएं हुईं और सैकड़ों लोग जेल गए। सरकार को स्वर्ण मन्दिर के प्रबंध के लिए एक प्रतिद्वन्द्वी कमेटी स्थापित कर चाबी सौंपने के लिए कोई मिला ही नहीं। अंततः सरकार को 17 जनवरी 1922 को सारे अकाली नेताओं को रिहा करने और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष बाबा खड़क सिंह को चाबियां सौंपने के लिए मजबूर होना पड़ा। देश में अकालियों की इस विजय को भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की बहुत बड़ी विजय माना गया। गांधीजी ने बाबा खड़क सिंह को तार भेज कर कहा, **भारत की आजादी की पहली लड़ाई जीत ली गई है, बधाई।**

लेकिन अमृतसर से 12 मील दूर 'गुरु का बाग' में एक और शक्ति-परीक्षण होने वाला था। यहां महंत की एक शिकायत पर सरकार ने गुरुद्वारे से सटी जमीन पर से लंगर के लिए लकड़ी काटने के लिए अकाली कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया। यह 8 अगस्त, 1922 की घटना है। अकालियों ने इस चुनौती को स्वीकार किया और प्रतिदिन 100 सिखों के जत्थे को अकाल तख्त में सत्याग्रह की शपथ लेने के बाद गुरु का बाग भेजा जाने लगा। इन स्वयंसेवकों को वापस लौटने से इंकार करने पर पुलिस द्वारा निर्ममतापूर्वक तब तक पीटा जाता था जब तक वे घायल या बेहोश होकर गिर नहीं जाते थे। 16 नवम्बर, 1925 तक दो हजार सिख इस प्रकार घायल हुए और 5,605 सिख गिरफ्तार किए गए।[2] लेकिन आंदोलन को दबाने और नीचा दिखाने में सरकार असफल रही। चाबियों के मामले और गुरु का बाग आंदोलन दोनों में अकालियों ने पंजाब की गैर-सिख आबादी और देश के नेताओं की सहानुभूति और सक्रिय समर्थन प्राप्त किया। गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू, पं० मदनमोहन मालवीय, हकीम अजमल खां, डा० सैफुद्दीन किचलू, स्वामी श्रद्धानन्द, रेवरेण्ड सी० ए० एन्ड्रयूज जैसे लोगों ने उन स्थानों का दौरा किया, जहां अकालियों ने मोरचे लगाए थे। कांग्रेस ने तो अकालियों के आन्दोलन की मदद के लिए अमृतसर में अकाली सहायक ब्यूरो खोला।

अकालियों का अगला संघर्ष धार्मिक कम, राजनैतिक ज्यादा था। नाभा के महाराजा रिपुदमन सिंह को अंग्रेजों ने जबर्दस्ती गद्दी से उतार दिया। 4 सितम्बर 1923 को जैतो में उनके समर्थन में गुरुग्रंथ साहिब के अखण्ड पाठ का आयोजन किया गया तो सरकार ने उसको रुकवा दिया। इस पर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी ने जैतो में जत्थे भेजने शुरू किए। 21 फरवरी, 1924 को 500

2. गंडा सिंह, 'ए ब्रीफ अकाउण्ट आफ सिख पीपुल' कलकत्ता, 1959, पृष्ठ 88। पुलिस नृशंसता का आंखों देखा वर्णन सी० एफ० एन्ड्रयूज ने किया है, देखें मोहिन्दर सिंह, उपर्युक्त, परिशिष्ट।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

व्यक्तियों के एक शहीदी जत्थे पर जैतो में सरकार ने अंधाधुंध गोली चलवाई जिसमें 100 मारे गए और 200 घायल हुए। 21 जुलाई, 1925 तक यह संघर्ष चला, जब अंततः सरकार ने अखण्ड पाठ पर से प्रतिबन्ध हटा लिया। जैतो के मोरचे के दौरान अकालियों और कांग्रेस के मैत्री सम्बन्धों का चरमोत्कर्ष देखा गया। सितम्बर 1923 में दिल्ली में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ तो कांग्रेस ने पर्यवेक्षकों का एक दल नामा भेजने का फैसला किया। जवाहरलाल नेहरू, ए० टी० गिडवानी, और के० संतानम के इस दल ने जैसे ही नाभा रियासत में प्रवेश किया वैसे ही उसे ब्रिटिश प्रशासक की अनुमति के बिना नाभा रियासत में प्रवेश करने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। नाभा जेल में और बाद में मुकदमे के दौरान कांग्रेस नेताओं को अकालियों के ज्यादा नजदीक आने और ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों और क्रूरताओं को देखने का मौका मिला। जवाहरलाल नेहरू ने अदालत के सामने बयान देने के लिए जो पहला मसविदा बनाया था उसके अंतिम अंश को यहां उद्धृत कर रहे हैं ताकि पाठक यह जान सके कि अकालियों के आंदोलन के बारे में देश के नेता उस वक्त क्या सोचते थे[3] :

"मुझे इस बात की खुशी है कि सिखों के आंदोलन के सिलसिले में मुझ पर मुकदमा चलाया जा रहा है। जब सिखों ने बड़ी बहादुरी से गुरु का बाग आंदोलन चलाया था और उसमें जीत हासिल की थी, तब मैं जेल में था। मैं अकालियों के साहस और बलिदान पर मुग्ध हुआ था और मेरे मन में इच्छा हुई कि मुझे कोई ऐसा मौका मिले जिससे कि मैं उनके लिए कुछ कर सकूं और उनके प्रति अपनी प्रशंसा के भाव का इजहार कर सकूं। आज मुझे वह मौका मिला है। मैं हृदय से यह आशा करता हूं कि मैं उनके अद्‌भुत साहस और महान परम्पराओं के योग्य साबित होऊंगा। सत श्री अकाल।"

नाभा

जवाहरलाल नेहरू
25 सितम्बर, 1923

आखिरकार, सरकार 1925 में गुरुद्वारा विधेयक लाने को मजबूर हुई जिसमें सारे ऐतिहासिक गुरुद्वारों का प्रबंध और नियंत्रण एक चुने हुए बोर्ड के हाथों में सौंप दिया गया, जो शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी कहलाई। तभी से यह कमेटी चली आ रही है और सिख इस संस्था को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ

3. मोहिन्दर सिंह, 'दि अकाली मूवमेंट', मैकमिलन इण्डिया, 1978, परिशिष्ट 5, पृष्ठ 211-12।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

अपने संघर्ष की एक ऐतिहासिक धरोहर मानते हैं। कुल मिलाकर गुरुद्वारा मुक्ति आंदोलन में, 1920 से 1925 तक, अनुमान है कि तीस हजार सिख जेल गए, पन्द्रह लाख रुपये जुर्माना सरकार को दिया, और लगभग 500 व्यक्तियों की जानें गईं।"[4]

गुरुद्वारा मुक्ति आंदोलन (1920-25) के दौरान अकालियों और कांग्रेस में जो मैत्री और सहयोग स्थापित हुआ वह आगे और मजबूत हुआ। गांधीजी के शान्तिपूर्ण अहिंसक सत्याग्रह और असहयोग की अपील को सिखों ने पूरा समर्थन दिया। लाला लाजपत राय के शब्दों में, "जहां तक अहिंसा और इससे जुड़े हुए बलिदान का सवाल है, उन्होंने (सिखों ने) ननकाना साहिब में···और बाद में अजनाला और अमृतसर में इसका सबसे जबर्दस्त सबूत दिया है। उन्होंने अपने को अपने गुरुओं का सच्चा उत्तराधिकारी साबित किया है और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बलिदान और शान्त साहस, जो घमण्ड से काफी दूर है, के जो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं वैसे उदाहरण अन्यत्र मिलना मुश्किल है।"[5]

जब फरवरी 1922 में पंजाब प्रादेशिक कांग्रेस के अध्यक्ष लाला लाजपत राय को जेल में डाल दिया गया तो बाबा खड़क सिंह ने उनकी जगह ली। तब सरकार ने महात्मा गांधी को छः साल के लिए और बाबा खड़क सिंह को पांच साल के लिए जेल भेजा। कैदियों को जेल में काली पगड़ी या गांधी टोपी पहनने पर प्रतिबन्ध लगाने के विरोध में बाबा खड़क सिंह ने दिसम्बर, 1922 में अपने कपड़ों का त्याग कर दिया। सिखों और हिन्दुओं को विभाजित करने के उद्देश्य से सरकार ने काली पगड़ी पर से प्रतिबंध उठा लिया। लेकिन बाबा खड़क सिंह का निर्णय नहीं बदला और उन्होंने कपड़े तभी पहने जब साढ़े चार साल बाद वे जेल से बाहर आए। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ हिन्दुओं और सिखों की एकता का यह एक छोटा-सा किन्तु जबर्दस्त उदाहरण था। बाबा खड़क सिंह पंजाब के उन प्रमुख नेताओं में से एक थे जिन्होंने 1928 में साइमन आयोग के खिलाफ प्रदर्शनों का नेतृत्व किया। यह मैत्री आगे भी चली और प्रमुख सिख नेताओं ने कांग्रेस के वरिष्ठ पदों पर काम किया। मास्टर तारा सिंह अखिल भारतीय कांग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्य बने। इन्हीं मजबूत रिश्तों के चलते मास्टर तारासिंह ने पाकिस्तान में जाने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और सिखों ने 15 अगस्त, 1947 को जब देश-विभाजन हुआ तो भारत को ही अपना देश माना।

लेकिन सिखों की समस्याओं का अन्त नहीं हुआ। विभाजन के समय सीमा

4. गंडा सिंह, 'ए ब्रीफ अकाउण्ट ऑफ सिख पीपुल', पृष्ठ 90।
5. गंडा सिंह, उपर्युक्त, पृष्ठ-91-92।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

के दोनों तरफ भयंकर मारकाट मची और लाखों परिवार शरणार्थी बनकर भारत आए। इनके पुनर्वास की उलझनें आज भी बनी हुई हैं। शीघ्र ही भाषा-विवाद भी पैदा हो गया। संयुक्त पंजाब में पंजाबी भाषा का आर्य समाज ने विरोध किया और 1951 की जनगणना में हिन्दुओं को अपनी भाषा हिन्दी लिखाने के लिए अभियान चलाया। पंजाब के जो हिन्दू परिवार हिन्दी भाषा के दो वाक्य भी नहीं जानते थे, उन्होंने अपनी मातृभाषा हिन्दी लिखाई। धर्म और भाषा को जोड़ने का यह एक गंदा प्रयास था। इससे काफी कटुता फैली। लाला जगतनारायण जैसे आर्यसमाजी नेताओं और उनके अखबारों ने इसमें प्रमुख भूमिका निभायी। जिस हिन्दू-सिख साम्प्रदायिकता को स्वाधीनता आंदोलन के दौरान दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर दिया गया था, वह अब उभरने लगी।

पंजाबी भाषा को प्रतिष्ठित करने के लिए यह महसूस किया गया कि ऐसे प्रान्त का गठन जरूरी है जहां पंजाबी-भाषी बहुमत में हों। देश के अन्य भागों में भी भाषावार प्रान्तों का गठन हो रहा था। अतः 'पंजाबी सूबे' का आन्दोलन चला। अकाली दल द्वारा चलाया गया यह दूसरा बड़ा आन्दोलन था। आन्दोलन दो चरणों में चला। पहली बार 1955 में पंजाबी सूबे की मांग हुई और 12000 से भी अधिक लोग गिरफ्तार किए गए। सरकार ने तब 1956 में पंजाब में एक ही विधायिका के अंतर्गत दो क्षेत्र—हिन्दी क्षेत्र और पंजाबी क्षेत्र—बनाए जिन्हें कानून और व्यवस्था, कराधान और वित्त को छोड़कर अन्य विषयों में स्वायत्तता दी गयी। लेकिन यह फार्मूला चल नहीं पाया और अकाली दल शीघ्र ही इससे असंतुष्ट हो गया। 1960 में अकाली दल ने कांग्रेस से अलग होकर दूसरा बड़ा आन्दोलन पंजाबी सूबे के लिए चलाया। पचास हजार सिख इसमें गिरफ्तार हुए। एक दर्जन से ज्यादा सिख पुलिस की ज्यादतियों से मारे गए। अनेकों बार अकाली नेता आमरण अनशन पर बैठे। लेकिन केन्द्र की कांग्रेस सरकार टालमटोल की नीति अपनाती रही। 4 जुलाई, 1965 को लुधियाना में अकाली दल के एक सम्मेलन में कहा गया कि सिखों ने इस स्पष्ट आश्वासन और समझ के साथ भारतीय राष्ट्र में विलीन होने का निर्णय किया था कि उन्हें भारतीय प्रभुसत्ता में बहुसंख्यक समुदाय के साथ हिस्सेदारी का संवैधानिक दर्जा दिया जाएगा, लेकिन अब कांग्रेस सरकार इस आश्वासन की घोर उपेक्षा कर रही है। सम्मेलन में पारित प्रस्ताव में यह कहा गया कि आत्मरक्षा के लिए सिखों के पास अब इस बात के सिवाय कोई चारा नहीं रह गया है कि "वे भारतीय गणराज्य के अंतर्गत आत्म-निर्णय वाला राजनैतिक दर्जा प्रदान किये जाने की राजनैतिक मांग करें।"[6] अकाली दल द्वारा ज्यादा स्वायत्तता की मांग का सूत्रपात यहीं से होता है।

6. मोहिन्दर सिंह, उपर्युक्त।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

6 साल तक पंजाबी सूबे की मांग को टालने और अकाली आन्दोलन को दबाने-भरमाने के बाद 23 अप्रैल 1966 को प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी ने पंजाबी सूबे की मांग मानने की घोषणा की। पंजाब को हरियाणा और पंजाब दो प्रान्तों में बांट दिया गया। लेकिन चण्डीगढ़ और कुछ इलाकों को फिर भी विवादास्पद छोड़ दिया गया और उनके बारे में फैसला टाल दिया गया। पंजाब में स्थित भाखड़ा बांध और अन्य हेडवर्क्स का नियंत्रण भी केन्द्र सरकार ने अपने हाथ में रखा। इससे अकालियों का और पंजाबवासियों का असंतोष बना रहा और उन्होंने इस सम्बन्ध में अपनी मांगें मनवाने के लिए आंदोलन का रास्ता जारी रखा।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

2

पंजाब-संकट के मूल कारण

पंजाब के संकट को तरह-तरह से समझाने की चेष्टा की जा रही है। भारत सरकार के श्वेत पत्र में कहा गया है कि पंजाब में आतंकवादियों की कार्रवाइयों से राष्ट्र की अखण्डता को खतरा पैदा हो गया था क्योंकि वहां विदेशी सहयोग से बगावत की परिस्थितियां पैदा की जा रही थीं, लिहाजा पंजाब का संकट राष्ट्र की अखण्डता का संकट है।बहुत सारे बुद्धिजीवी जो अब हिन्दू-सिख एकता और मरहम-पट्टी करने की बात कर रहे हैं, इसे देश में बढ़ते हुए साम्प्रदायिक विद्वेष और हिंसा के वातावरण से उत्पन्न संकट मानते हैं। लेकिन पंजाब का संकट न राष्ट्र की अखण्डता का संकट है और न ही बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता और हिंसा का संकट है। यह तो मुख्य रूप से एक राजनीतिक संकट है, जो तीन साल से चल रहे अकालियों के जन-आन्दोलन और भारत सरकार के उसे कुचलने की कोशिशों से पैदा हुआ है। पंजाब और सिखों की कुछ मांगों को लेकर अकालियों ने तीन साल से जो आंदोलन छेड़ रखा था, वह इन्दिरा गांधी की पारिवारिक तानाशाही के लिए चुनौती बन गया था। पंजाब में साम्प्रदायिक तनाव निश्चय ही था और वहां आतंकवादी कार्रवाइयां भी हो रही थीं, लेकिन ये रोग के बजाय रोग के लक्षण ज्यादा थीं। हम यह मानते हैं कि पंजाब भारत सरकार की घृणित चालों का शिकार बनाया गया है।

शिरोमणि अकाली दल ने, जिसके संत लोंगोवाल अध्यक्ष हैं[1], पंजाब और सिखों की कुछ मांगों को लेकर 1982 के मध्य से आन्दोलन शुरू किया। ये मांगें शिरोमणि अकाली दल की कार्यकारिणी द्वारा 16-17 अक्टूबर, 1973 को

1. अकाली दल में एक गुट तलवंडी गुट है और एक मास्टर तारासिंह के तथाकथित समर्थकों का गुट भी है जिसे अकाली दल (मास्टर तारासिंह ग्रुप) कहा जाता है। अकाली दल को कमजोर करने के लिए इंका द्वारा इन गुटों को प्रोत्साहित किया जाता है। यहां इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि संत लोंगोवाल की अध्यक्षता वाला दल ही मुख्य संगठन है और उसी ने आंदोलन चलाया ।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

आनन्दपुर में पास किए गए प्रस्ताव पर आधारित थीं। यहां यह बताना आवश्यक है कि इस आनन्दपुर-प्रस्ताव के आधार पर 28-29 अक्टूबर, 1978 को लुधियाना में अकाली दल के खुले अधिवेशन में 12 प्रस्तावों के रूप में इन मांगों को रखा गया।[2] यह बड़े अचरज की बात है कि इन मांगों पर बहस-मुबाहिसा तो बहुत कम हुआ लेकिन यह प्रचार किया जाता रहा कि अकाली दल खालिस्तान की मांग कर रहा है। इन प्रस्तावों को पढ़ने मात्र से अकाली दल की मांगों के बारे में बहुत-सी गलतफहमियां दूर हो जाती हैं। यद्यपि अकाली दल की सभी मांगों से सहमत होना कठिन है, लेकिन यह कहना होगा कि राज्य के लिए अधिक स्वायत्तता, चण्डीगढ़ और अन्य क्षेत्रों सम्बन्धी विवाद, रावी-व्यास के जल, अ० भा० गुरुद्वारा अधिनियम में जो मुख्य मांगें रखी गई हैं, वे पंजाब और सिखों की जायज शिकायतों पर आधारित हैं। इन्हें पृथकतावादी, अलगाववादी, साम्प्रदायिक और राष्ट्र-विरोधी कहना वास्तविकता से आंखें मूंदना है। ऐसा कहकर उन लोगों को जो शुरू में पृथकतावादी व साम्प्रदायिक नहीं थे, पृथकतावादी और साम्प्रदायिक बनने को बाध्य किया जा रहा है।

अकालियों की मांगों की पृष्ठभूमि

अकाली दल की पहली और मुख्य मांग यह है कि राज्यों को संघीय (फेडरल) ढांचे के भीतर ज्यादा स्वायत्तता प्रदान की जाए। केन्द्र का नियंत्रण प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों, मुद्रा, रेलवे और संचार-व्यवस्था तक ही सीमित रहे। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की अपनी इस मांग के पक्ष में अकाली जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा का भी हवाला देते हैं। उनके प्रस्ताव में कहा गया है, "कांग्रेस के शासन में संविधान में बार-बार संशोधन कर सत्ता का केन्द्रीकरण करने की प्रक्रिया का चरमोत्कर्ष इमरजेंसी के रूप में तब प्रकट हुआ, जब नागरिकों के सारे मूल अधिकार छीन लिए गए थे। इसके बाद शिरोमणि अकाली दल के सत्ता के विकेन्द्रीकरण के कार्यक्रम को जनता पार्टी, भाजपा, अ० द्र० मु० क० आदि अन्य राजनीतिक पार्टियों ने भी स्वीकार किया।" अकाली दल यह अपील करता है कि "देश के सांवधानिक ढांचे को वास्तविक व सार्थक संघीय (फेडरल) सिद्धान्तों के आधार पर इस तरह नया रूप प्रदान किया जाए कि देश की राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को किसी खतरे की आशंका ही न रहे और राज्य अपने-अपने क्षेत्र में अपनी सत्ता के सार्थक उपयोग द्वारा भारतीय जनता की प्रगति और समृद्धि के लिए उपयोगी भूमिका का निर्वाह कर सकें।"

हमने ऊपर जो उद्धरण दिया है उससे यह प्रकट है कि अकाली दल राष्ट्र की

2. इन प्रस्तावों को परिशिष्ट 1 में दिया गया है।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

एकता और अखण्डता को आवश्यक मानता है। उसकी मांगों में खालिस्तान या एक अलग राष्ट्र की बात कहीं भी नहीं कही गई है। उसके प्रस्ताव में 'सिख कौम' शब्द का अंग्रेजी में अनुवाद 'सिख नेशन' किया गया है जिससे कुछ गलतफहमी पैदा हो सकती है। लेकिन संत लोंगोवाल ने इस बारे में गलतफहमी दूर करते हुए कहा है कि "इसका आशय सिख समुदाय की अलग पहचान से है, उसके लिए अलग देश की मांग करना नहीं है।"[3] अकाली सिर्फ पंजाब के लिए ही नहीं, सारे राज्यों के लिए ज्यादा स्वायत्तता चाहते हैं। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की मांग भी कोई नई नहीं। गांधीजी की ग्राम स्वराज की अवधारणा और लोहिया का चौखंभा राज्य का विचार, सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर ही आधारित हैं। राज्यों को ज्यादा स्वायत्तता प्रदान करने की अकालियों की मांग इसी दिशा में एक कदम है।

भारत जैसे विशाल देश की एकता उसकी विविधता को स्वीकार कर ही हासिल की जा सकती है। विविधता को दबाने या उदासीन रूप से बरदाश्त करने के बजाय उसे रचनात्मक रूप से पहचानना और स्वीकार करना आवश्यक है। भारत विभिन्न समुदायों का देश है। इन विभिन्न समुदायों को यह विश्वास दिलाना चाहिए कि उनकी पहचान को स्वीकार किया जाएगा और देश की एकता किसी की बपौती नहीं, उसमें सभी समुदायों का साझा है। अकाली साझेदारी, हिस्सेदारी और विकेन्द्रीकरण के आधार पर देश की एकता की मांग करते हैं। इसमें कुछ भी गलत नहीं है। यह एक जायज मांग है। लेकिन इंका सरकार तो देश में इस तरह की एकता चाहती है जिसमें सब समुदाय अपनी पहचान को नई दिल्ली के पूरी तरह हवाले कर दें और अपने को एक अत्यधिक केन्द्रीय व्यवस्था के अर्दली बना डालें। इंका शासित राज्यों में मुख्यमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की मनमरजी से चुने, बदले और थोपे जाते हैं। जो उनके खिलाफ विद्रोह करते हैं, उन्हें क्षेत्रीयतावादी, साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय एकता के लिए खतरनाक करार दिया जाता है। विद्रोह करने वाले समुदायों को श्रीमती गांधी दबाने और तोड़ने

3. अकाली दल के अध्यक्ष संत लोंगोवाल ने 12 अक्टूबर 1982 को घोषणा की थी कि "सिखों का भारत से किसी भी तरह से अलग होने का कोई इरादा नहीं है। वे सिर्फ इतना ही चाहते हैं कि उनके धर्म में किसी भी प्रकार का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप न किया जाये और उन्हें सिखों की हैसियत में भारत के भीतर रहने दिया जाये। निःसन्देह सिखों की राष्ट्रीयता (नेशनालिटी) वही है जो अन्य भारतीयों की।" ए० जी० न्यूरानी द्वारा इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इंडिया, 22 जुलाई 1984 में उद्धत। इसी तरह कुछ अन्य नारों के बारे में भी गलतफहमी होती है। 'राज करेगा खालसा' का अर्थ होता है कि ईमानदार और सच्चे लोग राज करेंगे। इसका अर्थ यह नहीं होता कि सिख राज करेंगे। ऐसे ही 'खालसा दा बोलवाला' का अर्थ होता है—सत्य की विजय होगी। (यह सत्यमेव जयते जैसा ही वाक्य है।)

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

की कोशिश करती हैं और जिसको वे तोड़ नहीं पातीं, उसे वे देश से अलगाना चाहती हैं।

देश की एकता के लिए किसी भी विदेशी हाथ से, यदि हो तो भी, कहीं ज्यादा खतरनाक श्रीमती इन्दिरा गांधी की यह प्रवृत्ति है। इधर के वर्षों में केन्द्रीय सत्ता के खिलाफ अपनी पहचान पर जोर देने की मांग पर कई विद्रोह हुए हैं। यह स्वाभाविक है कि भारत के हिन्दी क्षेत्र के बजाय ये विद्रोह देश के सीमावर्ती इलाकों में ज्यादा हुए हैं। असमिया लोगों ने आन्तरिक औपनिवेशिक व्यवस्था और बंगलादेश से लगातार आप्रवासी लोगों के आगमन से अपनी पहचान मिट जाने के खतरे के खिलाफ आवाज उठाई है। आंध्र में तेलुगु रेशम का उदय वहां नई दिल्ली द्वारा बार-बार मुख्यमन्त्रियों को बदलने और उन्हें कठपुतलियों की तरह नचाने के खिलाफ तेलुगु लोगों के रोष की अभिव्यक्ति है। सिक्किम के मुख्यमन्त्री नरबहादुर भण्डारी को बहुमत में रहने के बावजूद गद्दी से हटा दिया गया क्योंकि वे नई दिल्ली के इशारे पर चलने और सिक्किम के कुछ समुदायों की मांगों का आत्म-समर्पण करने को तैयार नहीं थे। फारुक अब्दुल्ला को हटा दिया गया क्योंकि उन्होंने जम्मू व कश्मीर विधान सभा के चुनाव में इंका का विरोध करने और उसे पराजित करने की हिम्मत दिखाई थी। अकाली दल की राज्यों को ज्यादा स्वायत्तता देने की मांग पंजाब के उस असंतोष को ही प्रकट करती है, जो केन्द्र द्वारा क्षेत्रीय विवाद, नदी पानी के प्रश्न और अन्य मांगों पर अपनायी गई चालाकी और लम्बे समय से की जाने वाली टालमटोल से उत्पन्न हुआ है। आज पंजाब अकेला राज्य नहीं है, जो ज्यादा स्वायत्तता की मांग कर रहा है। देश में और सात राज्य हैं जो यही मांग कर रहे हैं। असम, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल, जम्मू-कश्मीर, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक आज केन्द्र की मनमानी और उसके द्वारा सत्ता के दुरुपयोग के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं। लेकिन यह कहना होगा कि अकाली दल ही ऐसा राजनीतिक दल है जिसने इसे जन-आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा बनाया है। यह केन्द्र और राज्यों के बाच अधिकारों के पुनर्वितरण की ऐसी मामूली समस्या नहीं है, कि जिस पर सरकारिया आयोग विचार कर सकता है। यह तो संघीय ढांचे के मूल-भूत पुनर्गठन की मांग है। इस मूलभूत पुनर्गठन के द्वारा ही देश में असली एकता लाई जा सकती है और देश के विघटन के उस खतरे को, जो इंका सरकार द्वारा उत्तर पूर्व, असम, कश्मीर और पंजाब की समस्याओं का सैनिक या अर्द्ध-सैनिक हल करने की कोशिशों के कारण बढ़ता जा रहा है, दूर किया जा सकता है। यहां यह याद करना पड़ता है कि बांगला देश के जन्मदाता शेख मुजीबुर रहमान नहीं, याह्याखान और पाकिस्तान के अन्य शासक थे।

अकालियों की दूसरी महत्त्वपूर्ण मांग चण्डीगढ़ और अन्य कुछ विवादग्रस्त क्षेत्रों के सम्बन्ध में है। अकाली चाहते हैं कि चण्डीगढ़ पंजाब को तुरन्त दिया जाए

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

और इसके बदले हरियाना को नई राजधानी बनाने के लिए रुपए-पैसे और साधन दिए जायें। अकालियों का कहना है कि चण्डीगढ़ को पंजाब की राजधानी के रूप में ही विकसित किया गया था। इसलिए पंजाब का उस पर स्वाभाविक अधिकार बनता है। जिस तरह वृहत्तर बम्बई को महाराष्ट्र और गुजरात के दो अलग राज्यों में विभाजित किए जाने के वक्त बम्बई महाराष्ट्र को दी गई उसी तरह पंजाब को चण्डीगढ़ दिया जाना चाहिए। ऐसे अन्य क्षेत्रों के बारे में जिन्हें अकाली पंजाबी-भाषी मानते हैं, अकाली दल की मांग यह है कि ये विवाद भाषा-विशेषज्ञों के ट्रिब्यूनल को सौंपा जाए और ट्रिब्यूनल गांव को इकाई मानकर भाषा के आधार पर इन क्षेत्रों के बारे में निर्णय करे। ये दोनों मांगें ही उचित लगती हैं। भाषायी आधार पर राज्यों के गठन का सिद्धान्त बहुत पहले स्वीकार कर लिया गया है, इसलिए अकाली दल की इस मांग को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इस बात का कोई कारण नजर नहीं आता कि पंजाब के मामले में इस सिद्धान्त को स्वीकार क्यों न किया जाए।

अकालियों की तीसरी मुख्य मांग रावी-व्यास नदियों के पानी के बंटवारे के बारे में है। अकाली कहते हैं कि इमरजेंसी के समय केन्द्रीय सरकार ने मनमाने ढंग से इस विषय पर निर्णय कर डाला था जिससे पंजाब के साथ अन्याय हुआ, सो इस विवाद को सर्वोच्च न्यायालय के सामने पेश किया जाए ताकि वह नदी पानी के वितरण सम्बन्धी सर्वमान्य सिद्धान्तों के आधार पर इसका फैसला करे।

सिंचाई, पंजाब की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था का प्राण है। पानी का अभाव पंजाब की सारी जिन्दगी को अस्त-व्यस्त कर देता है। इससे पानी का प्रश्न पंजाब में गम्भीर बन जाता है। इस प्रश्न पर अकालियों को पंजाब की जनता का पूरा समर्थन प्राप्त हुआ है। अकालियों की और कई मांगें भी कृषि और किसानों से जुड़ी हुई हैं। यह स्पष्ट है कि अकालियों के आन्दोलन के पीछे किसानों का रोष और उनकी समस्याएं हैं। पिछले कुछ वर्षों में देहाती इलाकों में अकालियों के समर्थन का आधार इसीलिए मजबूत हुआ है और उनके मोरचों में देहात के लोगों की ही भागीदारी प्रमुख रही है।

कुछ लोगों को यह बात समझ में नहीं आती कि पंजाब में आन्दोलन क्यों होता है। उनकी राय में पंजाब देश के सबसे अधिक खुशहाल राज्यों में है सो वहां लोगों को कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए। लेकिन इस राय का कोई औचित्य नहीं, क्योंकि पंजाब के किसान खासकर वहां के मेहनती किसानों को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पंजाब में हरित क्रान्ति का मिथक अब टूट रहा है। इससे अधिकांश किसानों को फायदा तो नहीं हुआ, लेकिन उनकी आकांक्षाएं जग गई हैं। हाल के एक सर्वेक्षण के अनुसार राज्य की 45 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा को पार कर नहीं पाई है। इसका मतलब तो यही होता

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

है, अधिकांश किसान गरीबी की रेखा के नीचे रह रहे हैं। हरित क्रान्ति के ज्यादातर फायदे व्यापारियों और बिचौलियों को हुए हैं। शायद यह पंजाब में सिख किसानों और हिन्दू व्यापारियों के बीच बढ़ते हुए सामाजिक वैमनस्य का भी एक कारण है।

पंजाब के किसान सिंचाई के लिए पानी, बिजली की दर, रासायनिक खाद की कीमतों और लगान व कर वसूली की समस्याओं से इतने ज्यादा आक्रान्त व त्रस्त हैं कि पिछले डेढ़ वर्षों में भारतीय किसान यूनियन ने, जो एक निर्दली किसान संगठन है, पंजाब में तीन बड़े आन्दोलन किए। 1983 में उसने पटियाला में सत्याग्रह किया था और 1984 में हजारों किसानों ने चण्डीगढ़ में कई दिनों तक अपनी मांगों पर जोर देने के लिए पंजाब राजभवन का घेराव किया। मई, 1984 के पहले सप्ताह में भारतीय किसान यूनियन ने गेहूं की मंडियों का बायकाट किया जिससे बहुत-सी मंडियों में गेहूं पहुंचा ही नहीं। अकाली दल ने भी किसानों को आह्वान किया था कि वे 3 जून 1984 से पंजाब से अन्य राज्यों को अनाज न जाने दें और सरकार की लगान व अन्य बकाया न चुकाएं ताकि उसके आन्दोलन को इस असहयोग से नई शक्ति प्राप्त हो। इसी आह्वान को सरकार ने फौजी कार्रवाई के लिए एक बहाना बनाया और 2 जून को सेना पंजाब में आ धमकी।

किसानों का असन्तोष अकाली आन्दोलन का अंग है। इससे यह प्रकट होता है कि देश में हर जगह किसान दिक्कतों में जी रहे हैं और उनके साथ अन्याय हो रहा है। देश में जो भी तथाकथित विकास हुआ है और समृद्धि आई है, वह उद्योगों और शहरों की ही है जिसकी कीमत गांवों और किसानों को चुकानी पड़ी है। हमारे देश में शोषण की एक आन्तरिक औपनिवेशिक व्यवस्था चल रही है जो दो तरीकों से अपना काम करती है। यह एक तरफ पिछड़े व अविकसित अंचलों की कीमत पर कुछ चुनिन्दा इलाकों को समृद्धि के द्वीपों की तरह पोसती है तो दूसरी तरफ देहाती व कृषि-क्षेत्र को चूसकर शहरी व औद्योगिक क्षेत्र को पुष्ट बनाती है। यह सारी प्रक्रिया अभी की सारी सरकारी नीतियों में अन्तर्निहित व प्रकट है और इससे पिछड़े अंचलों व देहाती व कृषिन्क्षेत्रों को साधनों से वंचित किया जाता है। क्या बात है कि इतने दिनों से लगातार मांग किए जाने के बावजूद सरकार पंजाब ही नहीं राजस्थान और हरियाणा के सिंचाई-संसाधनों के समुचित विकास के लिए कदम नहीं उठाती ? रावी नदी पर प्रस्तावित थियेन बांध 10 वर्षों से प्रधानमंत्री की स्वीकृति की प्रतीक्षा कर रहा है। इस बांध के न बनने से रावी नदी का बहुत सारा पानी पाकिस्तान चला जा रहा है। शायद केन्द्र को सिंचाई सुविधाएं विकसित कर सभी लोगों की शिकायत दूर करने की ईमानदार कोशिश करने के बजाय इस बात में ज्यादा दिलचस्पी है कि राज्य एक-दूसरे से लड़ें।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

अकालियों की धार्मिक मांगें—स्वर्ण मन्दिर से गुरवाणी के कीर्तन का प्रसारण करने, देशी और विदेशी हवाई जहाजों में कृपाण ले जाने पर से प्रतिबन्ध हटाने, अमृतसर शहर की सीमा के भीतर सिगरेट, शराब और मांस की बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाने, देश-भर के ऐतिहासिक गुरुद्वारों के लिए एक अखिल भारतीय गुरुद्वारा अधिनियम बनाने और संविधान की 25वीं धारा के अनुच्छेद (20)(बी) संशोधित करने और सिखों के लिए एक अलग व्यक्तिगत कानून बनाने के बारे में हैं। मजे की बात यह है कि केन्द्रीय सरकार को, जो अकालियों पर धार्मिक भावनाएं उभाड़ने का आरोप लगाती है, इन धार्मिक मांगों के बारे में कोई खास आपत्ति नहीं है और उसने इन्हें प्राय: मंजूर भी कर लिया है लेकिन उसे अकालियों की राजनीतिक मांगें मंजूर नहीं हैं। धार्मिक मांगों को तो मंजूर करने लेकिन राजनीतिक मांगों को ना मंजूर करने के पीछे श्रीमती इन्दिरा गांधी की वह प्रवृत्ति है जो अपने विरोधियों की तनिक-सी भी राजनीतिक सफलता बरदाश्त नहीं कर सकती—भले ही इसके लिए देश के एक पूरे राज्य को आग की लपटों में झोंकना क्यों न पड़े।

समझौता वार्ता को विफल करने के प्रयत्न

अकाली दल की मांगें इतनी उचित व वास्तविक हैं कि पंजाब इंका ने भी लगभग वैसी ही मांगें केन्द्र से की हैं। पंजाब में पहली बार ऐसी गैर-साम्प्रदायिक मांगों पर जोर दिया गया जिनका हिन्दुओं और सिखों, दोनों से वास्ता है। इन मांगों के बारे में प्राय: कोई मतभेद नहीं है। श्वेत-पत्र में अकाली दल पर मुख्य आरोप यह लगाया गया है कि समझौता वार्ता के दौरान वह अपनी मांगें बदलता रहता था और नई-नई मांगें पेश करने लगता था क्योंकि वह समझौता नहीं करना चाहता था। श्वेत पत्र (पृष्ठ तीन) में कहा गया है, "जब समझौता होता दिखाई पड़ता था तभी(अकाली दल द्वारा) बातचीत को बार-बार व्यर्थ कर दिया गया।" लेकिन सच्चाई ठीक इसके विपरीत है। अकालियों द्वारा नहीं केन्द्रीय सरकार द्वारा बातचीत को व्यर्थ कर दिया जाता था। सरकार ऐन मौके पर अपनी राय इस तरह बदल देती थी कि समझौता नहीं हो पाता था। सरकार की इस चाल का हरकिशन सिंह सुरजीत और अन्य कुछ व्यक्तियों ने, जिन्होंने समझौता वार्ता में समय-समय पर मध्यस्थता करने की कोशिश की थी, परदाफाश भी किया है।

समझौता वार्ता के दौरान कम से कम पांच ऐसे मौके आए थे जब अकालियों और सरकार के बीच समझौते की शर्तें तय हो गई थीं, लेकिन प्रत्येक बार सरकार समझौता करने से मुकर गई या पीछे हट गई।

(1) 2 नवम्बर 1982 को सरदार स्वर्णसिंह और हरकिशन सिंह सुरजीत के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप सरकार और अकालियों के बीच सहमति हो गई थी और अगले दिन इस सम्बन्ध में संसद में घोषणा किए जाने की बात तय की गई,

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

लेकिन अगले दिन 3 नवम्बर को संसद में जो वक्तव्य दिया गया वह 2 नवम्बर को हुई सहमति से भिन्न था। इस वक्तव्य पर स्वर्णसिंह ने दुख प्रकट करते हुए कहा, "इसमें तो न उस सहमति की भाषा है और न ही उसकी भावना।" इस वादाखिलाफी के बाद ही अकाली दल ने एशियाड के समय आन्दोलन करने की अपनी योजना की घोषणा की।

(2) इसके बाद फारुक अब्दुल्ला ने अकालियों और सरकार के बीच समझौता करवाने की एक और चेष्टा की। 18 नवम्बर को प्रधानमंत्री के प्रधान सचिव पी० सी० अलेक्जेंडर के मकान पर अकाली नेताओं ने मन्त्रिमंडलीय समिति के सदस्यों से मुलाकात की। इस बैठक में सुरजीत भी उपस्थित थे। बैठक में समझौता हो भी गया और यह तय हुआ कि रात को साढ़े आठ बजे एक विशेष विमान अमृतसर जाएगा और वहां सन्त लोंगोवाल को समझौता पढ़कर सुनाया जाएगा और उसके बाद मध्य रात्रि को उसकी घोषणा कर दी जाएगी। लेकिन सरकार इस समझौते से भी मुकर गई और अकाली नेता अमृतसर जाने के लिए हवाई जहाज की प्रतीक्षा करते रह गए।

(3) जनवरी 1983 में त्रिपक्षीय वार्ता के लिए विरोधी दलों को आमन्त्रित किया गया। इस वार्ता में काफी प्रगति हुई। क्षेत्र सम्बन्धी विवाद को छोड़कर अन्य सभी प्रश्नों पर समझौता हो गया। इस वार्ता में अकाली 17 हिन्दी-भाषी इलाकों के हस्तान्तरण के लिए राजी हो गए थे, लेकिन सरकार अपनी पहले की इस बात पर ही अडिग रही कि 1970 के (इन्दिरा गांधी के) पंच निर्णय को समग्र रूप से मानना पड़ेगा। इसका अर्थ यही होता था कि पंजाब को चण्डीगढ़ तभी मिलेगा जबकि हरियाणा को फजिल्का-अबोहर दिए जाएं। इस समझौता वार्ता को तोड़ने की सारी जिम्मेदारी अकालियों की नहीं, सरकार की है।"[4] यह समझौता वार्ता 20 फरवरी को असफल हो गई।

(4) इसके बाद 20 अप्रैल 1983 को सरकार और अकालियों के बीच समझौता हुआ लेकिन समझौते को कैसे लागू किया जाए, इसके तरीकों का तय होना बाकी रह गया था। इस बार भी सरकार पीछे हट गई।

(5) 30 जून 1983 को विरोधी दलों ने क्षेत्रीय विवाद पर सर्वसम्मति से एक हल प्रस्तुत किया। सरकार ने इस हल को अस्वीकार कर दिया।

प्रसिद्ध पत्रकार प्राण चोपड़ा ने 11-17 दिसम्बर 1983 के इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इंडिया में एक लेख लिखकर बताया है कि सरकार का समझौते के बारे में किस तरह का रवैया था। वे लिखते हैं, "23 जून 1983 को गृहमन्त्री ने अपनी पहल पर यह घोषणा की थी कि सरकार क्षेत्रों और नदी-पानी के विवादों पर

4. एच० के० सुरजीत : 'ट्रूथ फ्राम पंजाब', इंडियन एक्सप्रेस, 18 जून 1984।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

आयोग बैठाने को राजी है। लेकिन इस घोषणा के क्रम (सीक्वेंस) पर जरा गौर करें तो एक ऐसी सरकार के काम पर, जो काम करने का दावा करती है, हैरत होती है। 15 जून को गृहमन्त्री ने अकालियों को साफ-साफ कहा था कि अब अगला कदम उन्हें ही उठाना होगा और उन्होंने यदि समझौते के लिए कोई नए प्रस्ताव रखे तो वे (तत्कालीन गृहमंत्री प्र० च० सेठी) उस पर बातचीत की व्यवस्था करेंगे। 19 जून को जब श्रीमती इन्दिरा गांधी से पूछा गया कि क्या सरकार अकालियों से समझौता करने के लिए कोई नई पहल करने की बात सोच रही है, तो उन्होंने झिड़क कर गुस्से से कहा, "कौनसी नई पहल ?" तीन दिन बाद बातचीत को फिर से शुरू करने के किसी प्रकट प्रयत्न के बिना, प्रकाशचन्द्र सेठी ने अकाली दल को एक पत्र लिखा जिसमें कुछ पंक्तियां तो आयोगों की नियुक्ति के बारे में लिखी गई थीं और कई पैराग्राफ (अनुच्छेद) अकाली दल की कड़ी निन्दा करते हुए लिखे गए थे और उस पर यह आरोप लगाया गया था कि "वह राष्ट्र-द्रोही, साम्प्रदायिक और गैरजिम्मेवार है।"

इसी प्रकार 27 फरवरी 1983 को श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अकाली दल की तीन धार्मिक मांगों को मंजूर करने की घोषणा की। ध्यान देने की बात यह है कि उन्होंने अकालियों के समक्ष समझौता वार्ता के दौरान इसकी घोषणा नहीं की। उन्होंने यह घोषणा नई दिल्ली के गुरुद्वारा बंगला साहब में कांग्रेस समर्थक एक अकाली गुट द्वारा आयोजित सभा के मंच से की। इसका उद्देश्य धार्मिक मांगों को हासिल करने का श्रेय अकाली दल के बजाय अपने समर्थक अकाली गुट को देना था। इन धार्मिक मांगों के प्रश्न पर अकाली दल आन्दोलन कर रहा था और उसकी सरकार से इनके सम्बन्ध में बातचीत भी चल रही थी लेकिन इनको मंजूर करवाने का श्रेय कांग्रेस समर्थक मानचन्दा गुट को, दिल्ली के चुनावों में कांग्रेस को विजय दिलाने की मदद के पुरस्कार के रूप में दिया गया।

14 फरवरी 1984 को एक और त्रिपक्षीय बैठक बुलायी गयी। इसी दिन हिन्दू सुरक्षा समिति ने पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में बन्द का आह्वान किया। इस बन्द के सिलसिले में पंजाब और हरियाणा में कई स्थानों पर कुछ टोलियों और भीड़ द्वारा सिखों और गुरुद्वारों पर हमले किए गए। हरियाणा के पानीपत, करनाल, जींद और कुरुक्षेत्र में भीड़ ने हिंसात्मक कार्रवाइयां कीं। 19 फरवरी 1984 को पानीपत में 8 सिखों की हत्या की गयी। इन कार्रवाइयों में हरियाणा के मुख्य मन्त्री भजनलाल के हाथ होने की बात कही जाती है। बहरहाल इन घटनाओं के विरोध में अकाली दल ने समझौता-वार्ता में भाग नहीं लिया।

इस बात के कई संकेत मिलते हैं कि सरकार बातचीत द्वारा कोई समझौता नहीं करना चाहती थी और जानबूझ कर समझौते के मार्ग में बाधाएं खड़ी कर देती थी। समझौता वार्ता के दौरान मतभेदों का दायरा काफी कम होता गया था,

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

लेकिन सरकार कुछ प्रश्नों पर अपनी जिद पर कायम रही। एक ऐसा ही प्रश्न चण्डीगढ़ के हस्तांतरण को अबोहर-फजिल्का के हस्तांतरण से जोड़ने का था। अबोहर-फजिल्का इलाके के 115 गांवों में से कम से कम 60 गांव पंजाबी-भाषी हैं। यही नहीं, यह इलाका हरियाणा से सटा हुआ भी नहीं है। इसे हरियाणा से जोड़ने के लिए पंजाब और राजस्थान की सीमाओं के बीच में से एक गलियारे (कारीडोर) की व्यवस्था करनी होगी। देश के भीतर राज्यों के बीच इस तरह का गलियारा बनाने की बात हास्यास्पद ही कही जा सकती है। इस इलाके को पंजाब से अलग करने की बात सिर्फ इसलिए की जाती है कि इसमें गैर सिख बहुमत में हैं। प्रकारांतर से तो यह खालिस्तान के सिद्धांत को मानने जैसी ही बात है। ऐसा मान कर सरकार ही देश में साम्प्रदायिकता के आधार पर समाज के विभाजन को प्रोत्साहित कर रही है।

सरकार ने अन्य प्रश्नों पर भी कठोर रुख अपनाया और उन्हें अपनी इज्जत का सवाल बना डाला। यहां इसके कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं। सरकार के श्वेत पत्र में कहा गया है कि अकाली दल स्वर्ण मन्दिर से गुरवाणी को तीन घण्टे प्रसारण करने की मांग कर रहा था, लेकिन सरकार इस बात पर जोर देती रही कि प्रसारण दो घण्टे ही दिया जा सकेगा। अकाली दल अमृतसर शहर की सीमा के भीतर सिगरेट, शराब और मांस की बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाने की मांग कर रहा था। ऐसे कुछ प्रतिबन्ध हरिद्वार और कुरुक्षेत्र में लगे हुए हैं। लेकिन सरकार हर मन्दिर साहब के सिर्फ 200 मीटर के घेरे में ही प्रतिबन्ध लगाने को राजी थी। इन मांगों से सहमति या असहमति की बात अलग है। ध्यान देने की बात तो यह है कि सरकार इन्हें मानने को तैयार थी पर पूरी तरह नहीं। पूरी बात न मानकर अधूरी मानने की सरकार की जिद का मकसद कुछ और ही था। ऐसा लगता है कि सरकार समझौता वार्ता को लम्बा खींचकर समय गुजारना चाहती थी ताकि बाद में कठोर दमन की कार्रवाई कर सके। यह सरकार का पुराना तरीका है। असम में भी सरकार ने यही तरीका अख्तियार किया था। मतदाता-सूची में संशोधन करने के बारे में आसू (अखिल असम छात्र यूनियन) ने 1951 का वर्ष (कट आफ इयर) मानने का सुझाव दिया। बाद में उसने इसे बढ़ाकर 1961 कर दिया। समझौता वार्ता के दौरान एक समय आसू 'अनौपचारिक रूप' से 1967 के लिए भी राजी हो गया, पर सरकार 1971 पर ही अड़ी रही। अब लोग 1971 को अमल में लाए जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं पर सरकार यह भी अमल में नहीं ला रही है। इसके बावजूद वह घमण्ड से कहती है कि समझौते और मेल-मिलाप के लिए तो वह हमेशा ही सचेष्ट रहती है।

श्वेत पत्र में समझौता वार्ता के बहुत-से ब्योरे छिपाए गए हैं। उसमें स्वर्ण सिंह, ह० कि० सुरजीत और फारुक अब्दुला द्वारा समझौते के लिए किए गए प्रयत्नों

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

की चर्चा तक नहीं की गयी है। सरकार की अकाली नेताओं से बातचीत कर समझौता करने की अनिच्छा श्वेत पत्र के इस उपकरण से स्पष्ट रूप से जाहिर हो जाती है, "पंजाब समस्या के पीछे मुख्य बात अकाली दल द्वारा 1981 में पेश की गई मांगें नहीं हैं। उसके पीछे तो मुख्य बात विदेशों में कार्य कर रहे थोड़े-से ग्रुपों के सक्रिय समर्थन से पृथकतावादी तथा राष्ट्र-विरोधी आन्दोलन का बल पकड़ना है।" (पृष्ठ 2) नहीं, असली कारण और मुख्य बात तो यह थी कि लम्बे अरसे से चल रहे एक शांतिपूर्ण आन्दोलन के बावजूद बातचीत कर समझौता नहीं किया गया जिससे सिखों के बीच लोकतांत्रिक तरीकों में विश्वास करने वाला नेतृत्व काफी कमजोर हो गया और उग्रवाद मजबूत हुआ। सरकार का भी यही इरादा था कि आतंकवाद बढ़े। प्रारम्भ के दिनों में हिंसा और साम्प्रदायिकता नगण्य थीं। ये दोनों तो समझौता न हो पाने पर हताशा बढ़ती गयीं और इसके लिए सरकार पूर्ण रूप से दोषी है।

श्वेत पत्र सारा दोष अकालियों के मत्थे मढ़ने की कोशिश करता है। इसमें अकाली दल पर आरोप लगाया गया है कि "अकाली दल ने हत्या, आगजनी व लूटपाट के उद्देश्यों और तरीकों से असहमत लोगों की निर्मम हत्याओं को न केवल अनुचित नहीं ठहराया बल्कि आन्दोलनकारी कार्यक्रम और ऐसी हिंसा के बीच जो सारे राज्य को अपनी चपेट में ले रही थी, कोई गहरा सम्बन्ध होने से भी इन्कार करता रहा।" (पृष्ठ 17)

अकाली दल को राजनीति और धर्म में घालमेल करने का दोषी ठहराया जा सकता है। यह उसकी राजनीति की बड़ी भारी कमी है। लेकिन धार्मिकता हमेशा ही साम्प्रदायिकता हो, ऐसी बात नहीं, हालांकि दोनों के बीच फर्क कर पाना कठिन होता है। अकाली दल के मामले में तो बात कुछ उलटी ही थी क्योंकि इस बार के आन्दोलन में उसने (अकाली दल ने) शायद पहली बार ऐसी मांगें रखी थीं जो हिन्दुओं और सिखों दोनों की ही थीं। इन धर्म-निरपेक्ष मांगों के आधार पर ही उसका आन्दोलन खड़ा हुआ था। पंजाब में हिन्दू-बहुल पंजाबी-भाषी इलाकों को शामिल करने की मांग करना इसका एक प्रमाण है क्योंकि ऐसे इलाकों के शामिल किए जाने पर सिख पंजाब अल्पमत में हो जा सकते हैं। आज पंजाब में सिखों का बहुमत अत्यंत अल्प है, वे सिर्फ 52 प्रतिशत ही हैं। अगर अकाली एकदम ही सांप्रदायिक होते तो वे यह मांग कतई नहीं करते। अकाली दल के अध्यक्ष सन्त लोंगोवाल ने बार-बार कहा भी कि अकालियों की हिन्दुओं से कोई लड़ाई नहीं है, उनकी लड़ाई तो केन्द्र की मौजूदा सरकार से है। इसके विपरीत सरकार इसे हिन्दू-सिख संघर्ष का रूप प्रदान करना चाहती थी।

संत लोंगोवाल ने हिंसा और हत्याओं की बार-बार निन्दा की। शायद यह कहा जा सकता है कि उन्होंने यह निन्दा बहुत कड़े ढंग से नहीं की। शायद अकाली

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

दल और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्ध समिति पर स्वर्ण मन्दिर में गैर कानूनी हथियारों के कथित संग्रह के वक्त चुप ठहरने का आरोप भी लगाया जा सकता है। लेकिन अगर हथियार इकट्ठा किए जा रहे थे तो उसके लिए किसे दोषी ठहराया जाना चाहिए? सरकार को, जिस पर कानून व व्यवस्था की जिम्मेदारी है, या अकाली नेताओं को? सरकार द्वारा एक सम्मानपूर्ण समझौता करने से इन्कार करते रहने और आतंकवादियों को संरक्षण प्रदान करते रहने के चलते अकाली नेता तो एक प्रकार से आतंकवादियों के बन्धक बन गए थे। इस बात के बहुत-से प्रमाण हैं कि सरकार और सत्तारूढ़ दल की पंजाब में होने वाली आतंकवादी कार्रवाइयों और बढ़ती हुई हिंसात्मक घटनाओं में सीधी मिलीभगत थी।

संकट के पीछे देशी हाथ

पंजाब के संकट के पीछे विदेशी हाथ की बात बार-बार कही जाती है, लेकिन देशी हाथ की नहीं। यहां हम देशी हाथ के बारे में कुछ तथ्य रख रहे हैं :

(1) कहा जाता है कि अकालियों को नीचा दिखाने के उद्देश्य से 1978 में दल खालसा की स्थापना में ज्ञानी जैलसिंह ने पूरी मदद की। दल खालसा के एक प्रेस सम्मेलन का जैलसिंह ने खुलमखुल्ला आयोजन किया था।

(2) भिंडरावाले के इंका के साथ घनिष्ठ सम्बन्धों की बात छिपी हुई नहीं है। दिल्ली के प्रसिद्ध वकील पी० एन० लेखी ने प्रधान मन्त्री को पत्र लिख कर यह आरोप लगाया है कि 1980 में भिंडरावाले ने गुरुदासपुर निर्वाचन क्षेत्र में इंका उम्मीदवार के पक्ष में प्रचार किया था। इस निर्वाचन क्षेत्र से दिल्ली के भूतपूर्व पी० एस० भिंडर की पत्नी इंका की ओर से पी० एन० लेखी के खिलाफ उम्मीदवार थीं। ऐसा माना जाता है कि पी० एस० भिंडर को आई० जी० बना कर पंजाब इसीलिए भेजा गया था कि वह (भिंडर) भिंडरावाले से फिर से मेल-मिलाप करें।

सितम्बर, 1981 में लाला जगत नारायण की हत्या के सिलसिले में भिंडरावाले को गिरफ्तार किया गया, पर श्रीमती इन्दिरा गांधी के व्यक्तिगत हस्तक्षेप के कारण ही उन्हें बिना जमानत के रिहा किया गया। यही नहीं, भिंडरावाले की गिरफ्तारी भी बड़े विचित्र ढंग से की गई। वे अपनी शर्तों पर गिरफ्तार किए गए। उन्होंने अपनी गिरफ्तारी के स्थान, तारीख और समय की घोषणा की और सरकार ने उसके मुताबिक कार्रवाई कर उन्हें 'हीरो' बनाया। गिरफ्तारी के स्थान पर भारी भीड़ इकट्ठा हुई और पुलिस ने गोली चलायी जिससे 11 आदमी मर गये।

अपनी रिहाई के बाद भिंडरावाले ने स्टेनगनों से लैस अपने समर्थकों के साथ दिल्ली और बम्बई की यात्राएँ कीं। दिल्ली में भिंडरावाले अपने सशस्त्र अनुयायियों

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

के साथ सड़कों पर घूमते रहे। यह शक्ति-प्रदर्शन के सिवाय और कुछ नहीं था। कहा जाता है कि केन्द्र के दो काबीना स्तर के मंत्रियों ने उनके सम्मान में स्वागत समारोहों का आयोजन किया। सुरक्षा सेना के एक विशेष चार्टर्ड विमान से वे बम्बई गए। इन सब घटनाओं के बाद वे सचमुच ही 'हीरो' बन गए।

इन्दिरा गांधी ने भिंडरावाले की उनके मारे जाने के पहले कभी भी निन्दा नहीं की। राजीव गांधी ने तो उनकी प्रशंसा में यहां तक कहा कि वे एक धार्मिक नेता (सन्त) हैं। फौजी कार्रवाई के कुछ महीने पहले जनरल अरोड़ा को पंजाब के बारे में दूरदर्शन पर बोलने को कहा गया तो साथ में यह निर्देश भी दिया गया कि वे भिंडरावाले की आलोचना न करें। यह जाहिर है कि इंका ने भिंडरावाले को गढ़ा और वह आखिर तक उनके साथ कोई सौदेबाजी करने की आशा कर रही थी। लेकिन फौजी कार्रवाई के बाद इस 'धार्मिक नेता' के प्रति इंका के दृष्टिकोण में एकाएक परिवर्तन हो गया और वह उसकी निगाह में तस्करों, चोरों, डकैतों और व्यभिचारियों का सरदार बन गया।

(3) बाबा निहालसिंह हरिया बेला वाले को उनके सहयोगियों के साथ सुरक्षा सेना ने 7 जून 1984 को गिरफ्तार किया। उनके डेरे से काफी बड़ी तादाद में शस्त्र व गोला-बारूद, पांच नकाबें और एक मोटर साइकिल बरामद किए जाने की खबर भी छपी। लेकिन इस बाबा का इंका के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था, यह इस बात से प्रकट है कि 20 जून को टेलीविजन पर जिन तीन सिख नेताओं ने फौजी कार्रवाई का समर्थन करते हुए अपने उद्‌गार प्रकट किए थे, उनमें बाबा निहालसिंह हरिया बेला वाले भी एक थे। यही नहीं, बाबा संतासिंह की कारसेवा के लिए समर्थन जुटाने के वास्ते इंका के तत्वावधान में 11 अगस्त को अमृतसर में जो 'सरबत खालसा' आयोजित किया गया था, उसका आह्वान करने वाले ग्रंथियों में भी बाबा हरियाबेला वाले थे।

(4) पंजाब में फौजी कार्रवाई के पहले हत्याएं करने वाले आतंकवादी कभी भी पकड़े नहीं गए और न ही उन पर खुली अदालत में मुकदमा चलाने की कोई तजवीज की गई। संत लोंगोवाल ने खुल्लमखुल्ला यह आरोप लगाया था कि आतंकवादी कार्रवाइयों में इंका का हाथ है। उन्होंने सभी आतंकवादी घटनाओं की उच्च स्तरीय न्यायिक जांच करवाने की मांग भी की थी। उन्होंने यह भी कहा था कि अपने आरोपों को सत्य सिद्ध करने के लिए उनके पास दस्तावेज वाले प्रमाण हैं। यह स्वाभाविक ही था कि न्यायिक जांच की उनकी मांग मंजूर नहीं की गयी।

(5) दूसरी तरफ अकाली आन्दोलन को बदनाम करने और दमन करने का बहाना ढूंढ़ने के लिए कई प्रकार के नाटक किए गए। ऐसे नाटकों में मुख्य मन्त्री दरबारा सिंह की 'हत्या की कोशिश' भी थी। उन पर तीन संदिग्ध हमले हुए।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

पी० एस० भिंडर से जब एक पत्रकार ने पूछा, "क्या बात है कि दरबारा सिंह की हत्या करने के तीन प्रयत्न हुए पर किसी को भी गिरफ्तार नहीं किया गया," तो उन्होंने उत्तर दिया, "मेरे कार्यकाल के दौरान एक ही प्रयत्न हुआ। यह प्रयत्न दरबारा सिंह को राज्य सभा के लिए नामजद किए जाने के ठीक पहले नांगल में हुआ। दरबारा सिंह नांगल जा रहे हैं, इसकी मुझे कोई सूचना नहीं दी गयी। आप (पत्रकार) नांगल के इस हत्या के प्रयत्न की पड़ताल कीजिए। क्या यह संभव है कि 10 राउंड गोली चलायी जाए और किसी की मौत न हो?" (प्रोब इंडिया, जुलाई 1984)।

एसोसिएशन डेमोक्रेटिक राइट्स (लोकतांत्रिक अधिकार रक्षा संगठन) की एक रपट में दरबारा सिंह की हत्या के लिए किए गए प्रयत्नों में से एक का इस प्रकार विवरण दिया गया है: "20 अगस्त, 1982 को राहोन में दो हथगोले फेंके गए। पुलिस के कई सिपाही और उपस्थित लोगों में से कुछ लोग घायल हुए लेकिन दरबारा सिंह पर फेंका गया हथगोला नहीं फटा। यह एक रूमाल में बड़ी मजबूती से बंधा हुआ था। घटनास्थल पर एक आदमी को गिरफ्तार करने का दावा किया गया। इसके बाद घटना के दूसरे दिन रात को एक मुठभेड़ में हत्यारे के सहयोगी की मारे जाने की घोषणा की गई। घटना के दौरान गिरफ्तार व्यक्ति (यानी कथित हत्यारा) को बाद में रिहा कर दिया गया। यह साबित हो गया कि वह पुलिस का आदमी था और उसी ने नाटक का इन्तजाम किया था सो उसे रिहा करना पड़ा।"

(6) पंजाब की हिन्दू सुरक्षा समिति के अध्यक्ष पवन कुमार हाल तक इंका की यूथ कांग्रेस के नेता थे। वे पटियाला में इंका के म्यूनीसिपल कमिश्नर भी रह चुके हैं। 14 फरवरी 1984 के दिन जब त्रिपक्षीय वार्ता शुरू होने वाली थी, हिन्दू सुरक्षा समिति की ओर से बन्द का आह्वान किया गया। इस बन्द के बारे में हम यहां एसोसिशएन फार डेमोक्रेटिक राइट्स की रपट से फिर एक विवरण दे रहे हैं: "हमें जांच-पड़ताल से पता चला कि 14 फरवरी को स्थानीय इंका नेताओं ने हरिजन बस्तियों से लोगों को पैसे देकर और शराब पिलाकर इकट्ठा किया। इन लोगों ने दुकानदारों को परेशान व तंग करना शुरू किया। इसके बाद दोपहर को अमृतसर, जलन्धर, लुधियाना और पटियाला में एक ही साथ उपद्रव शुरू हुए। शहरों के दादाओं के नेतृत्व में ये उपद्रव होते रहे। रात और दिन को कर्फ्यू लगा दिया गया। इससे लोग काफी आतंकित हो गए और उनकी परेशानी भी बढ़ गई। हमारे जांच-दल के लोगों के सामने पुलिस अधिकारियों ने यह बात कबूल की कि वे उपद्रवियों को पहचानते थे पर उनके रसूखों के कारण उनके खिलाफ कुछ भी करने में असमर्थ थे।"

हरियाणा में तो इससे भी भयानक घटनाएँ हुईं। पानीपत और अन्य कई

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

स्थानों में पुलिस की मौजूदगी में भीड़ बसों को रोक लेती थी और उनसे सिखों को उतार लेती थी। उनके केश काट डालती थी और मार-पीटकर उनका सामान भी लूट लेती थी। भजनलाल की सरकार ने यह सब होने दिया। कहा जाता है कि इन घटनाओं के पीछे भजनलाल की शह ही नहीं मदद भी थी। भजनलाल काफी दिनों से सिखों को सबक सिखाने की बात कह रहे थे।

पंजाब में हिंसा और सांप्रदायिकता फैलाने और उकसाने में इंका के सीधे हाथ होने के बहुत-से और उदाहरण दिए जा सकते हैं। सवाल यह उठता है कि उसने ऐसा क्यों किया ? हिंसा और सांप्रदायिकता बढ़ाने से श्रीमती इन्दिरा गांधी के उद्देश्यों की कई प्रकार से पूर्ति होती थी। ये उद्देश्य थे :

(1) अकाली इन्दिरा गांधी के पक्के विरोधी हैं। उनके आन्दोलन को बदनाम करना, कमजोर करना और उनमें फूट डालना।

(2) हिन्दुओं में असुरक्षा की भावना पैदा करना और उन्हें यह जताना कि सिर्फ वे (इन्दिरा गांधी) ही उनकी रक्षा कर सकती हैं। यही चाल इन्दिरा गांधी ने जम्मू में भी चली थी।

(3) स्थिति को बिगड़ने देना ताकि संकट पैदा हो और फिर कड़ाई के साथ हस्तक्षेप करना ताकि जनमानस उनको 'दुर्गा' मान ले।

(4) सीमावर्ती इलाकों में 'असुरक्षा की स्थिति' का फायदा उठाकर यह ढिंढोरा पीटना कि 'भारत खतरे में है' और 'विदेशी शक्तियां सक्रिय हैं', ताकि अपने हाथों में और भी अधिक सत्ता केन्द्रित कर सकें और लोगों के लोकतांत्रिक अधिकारों का हनन कर सकें।

यह जाहिर है कि पंजाब के संकट में विदेशी शक्तियों का उतना हाथ नहीं है जितना कि इंका का 'हाथ' है।

लेकिन इसके साथ ही यह समझना भी आवश्यक है कि आखिर पंजाब में आतंकवाद अचानक इतना अधिक कैसे बढ़ गया ? हमें इसके चार मुख्य कारण नज़र आते हैं। पहला तो यह है कि इसे इंका के भरपूर साधनों का सहारा और सरकारी संरक्षण मिला। दूसरे, पंजाब में हिन्दू साम्प्रदायिकता से इसे बल मिला। पंजाब में साम्प्रदायिकता का बीज, आर्य समाज और अन्य साम्प्रदायिक संगठनों ने भाषा के प्रश्न को साम्प्रदायिक रंग प्रदान कर बो रखा था। हम सब यह जानते हैं कि पंजाब में सभी समुदायों की भाषा पंजाबी है। लेकिन 1951 की जनगणना के समय हिन्दू संगठनों ने हिन्दुओं से अपील की कि वे अपनी मातृभाषा के रूप में पंजाबी के स्थान पर हिन्दी को दर्ज करवायें। इससे हिन्दुओं और सिखों के बीच संदेह और अविश्वास पैदा हुआ। हिन्दू संगठनों ने भाषा के प्रश्न पर कुछ उसी प्रकार की साम्प्रदायिकता को उभाड़ने की कोशिश की, जिस प्रकार की पूर्वी पाकिस्तान में बंगला के खिलाफ की गयी थी। इसी के परिणामस्वरूप पाकिस्तान टूटा। हिन्दू

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

संगठन पंजाब में पंजाबी हिन्दुओं पर हिन्दी लादने की कुछ वैसी ही कोशिश कर रहे थे जैसी पाकिस्तानी शासकों ने बंगालियों पर उर्दू लादने के लिए की थी। हिन्दू संगठनों की इस कोशिश के कारण ही भाषायी सिद्धांत के आधार पर राज्य की सीमा निर्धारित करने में सारी समस्याएं पैदा हुईं। तीसरा कारण, सरकार द्वारा शांतिपूर्ण अकाली आंदोलन को दमन वकठोर कदमों से कुचलना और एशियाड के वक्त सिखों को तंग करना था। इससे सिख युवकों में तीव्र असंतोष और गुस्सा पैदा हुआ।

ये सब आतंकवाद को बढ़ाने वाले तात्कालिक कारण थे। लेकिन एक और कारण भी था। यह कारण दुनिया में अन्य बहुत-से स्थानों पर भी आतंकवाद के बढ़ने से जुड़ा हुआ है। हम दुनिया-भर में यह देख रहे हैं कि एक किस्म की हताशा के वातावरण में एक खास प्रकार की चीज पैदा हो रही है—यह चीज पुनरुत्थान-वाद का एक चरम रूप है। इस पुनरुत्थानवाद को पंजाब की उत्तेजनात्मक परि-स्थितियों में एक खास वक्त में अपनी जड़ जमाने का मौका मिल गया और यहीं से भिंडरावाले का 'करिश्मा' शुरू हुआ।

'भिंडरावाले का करिश्मा'

भिंडरांवाले का 'करिश्मा' तभी समझा जा सकता है जब हम उसे अन्य कई चीजों से जोड़कर देखें। यह दुनिया-भर में बहुत सारे धार्मिक समुदायों के बीच अभी पुनरुत्थानवाद की जो लहर फैल रही है, उसका ही एक अंग है। 19वीं सदी के मध्य से ही जनमानस एक आदर्श व्यवस्था की कल्पना से सम्मोहित था। सौ साल से भी ज्यादा से चला आ रहा आदर्श व्यवस्था की कल्पना का सम्मोहन अब समाप्त हो गया है और उसका सपना टूट गया है। आदर्शवादी व्यवस्था की कल्पना का यह सपना एक सामाजिक क्रांति का सपना था जिसकी अभिव्यक्ति समाजवाद, साम्यवाद, मार्क्सवाद और अराजकतावाद आदि में हुई। यही नहीं, उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव भी ठीक ऐसे समय पर अपनी चरम अवस्था पर पहुंचा जब लोगों का आदर्शवादी व्यवस्था की कल्पना का सपना टूट रहा था और उनका मोह भंग हो रहा था।

इस शताब्दी के मध्य तक लोग समाज की आर्थिक व अन्य प्रकार की समस्याओं का हल एक नयी समाज-व्यवस्था के निर्माण में ढूंढ़ते थे। इसके साथ कहीं यह मान्यता भी काम कर रही थी कि अधिकांश समस्याएं आर्थिक हैं और एक बार ये हल हो गयीं तो अन्य सारी समस्याएं भी हल हो जायेंगी। लेकिन दूसरे विश्वयुद्ध के बाद सोवियत यूनियन की दशा के बारे में लोगों की जानकारी बढ़ती गयी है। इस शताब्दी में आदर्शवादी व्यवस्था की कल्पना को मूर्तरूप प्रदान करने की सबसे बड़ी कोशिश सोवियत यूनियन में ही हुई। लोग सोवियत यूनियन

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

रूपी स्वर्ग में भी नारकीय जगत की उन सभी बुराइयों को, जिनसे वे छुटकारा पाना चाहते थे, देखकर हताश हो गये हैं। यही नहीं, उपभोक्तावाद की सारी घृणित चमक-दमक को समाजवादी जगत बड़ी लालसा से अपना रहा है। इसी उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते पिछड़े व गरीब देशों में तरह-तरह के तनाव पैदा हो रहे हैं। ऐसी ही परिस्थितियों में, जिसमें गरीबों को तरह-तरह के विलास व सुविधाएं जुटाने वाले अलभ्य उपकरणों द्वारा लुभाया जा रहा है और उनका एक आदर्शवादी व्यवस्था का सपना टूट गया है, पुनरुत्थानवाद को पनपने का मौका मिल रहा है। पुनरुत्थानवाद गरीब को ऐसी दुनिया का सपना दिखा रहा है जिसमें वह इज्जत के साथ रह सकता है और जहां अमीर अपने वैभव की हेकड़ी से उसे आक्रांत नहीं कर सकता—यह एक ऐसी दुनिया का सपना है, जिसमें धर्म अपने प्राचीन गौरवमय रूप में पुनः प्रतिष्ठित होगा।

पंजाब के जनमानस में इस तरह के मानसिक दबाव आसानी से देखे जा सकते हैं। पंजाब में कम्युनिस्ट आंदोलन ने काफी पहले पांव जमाये थे। आजादी के तुरन्त बाद ही तेजासिंह की लाल पार्टी ने किसानों को आंदोलन कर उनके लिए कुछ सुविधाएं हासिल करने में सफलता पायी थी। इसके बाद 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में पंजाब में नक्सलवादियों का लड़ाकू आंदोलन शुरू हुआ, जिसका व्यापक प्रभाव पड़ा। यह आंदोलन बहुत दिनों तक चल नहीं पाया और 1970 के दशक के पूर्वार्द्ध में ही बिखरकर समाप्त हो गया। ध्यान देने की बात यह है कि यह आंदोलन ऐसे समय में हुआ जब विश्व के पैमाने पर कम्युनिस्ट आंदोलन का क्रांतिकारी स्वरूप समाप्त हो चुका था। इसीलिए नक्सलवादी आंदोलन एक व्यापक क्रांतिकारी शृंखला की कड़ी नहीं बन पाया। इसने लोगों के मन में एक नये भविष्य के प्रति विश्वास तो पैदा नहीं किया लेकिन उनकी आकांक्षाओं और गुस्से को अलबत्ता जगा दिया।

यह समय पंजाब में हरित क्रांति का भी था। इससे किसानों को समृद्धि हासिल हुई लेकिन उनसे भी ज्यादा शहरी हितों को लाभ पहुंचा। व्यापारियों और बिचौलियों ने मंडियों पर नियंत्रण रखकर किसानों को उनकी आवश्यकता का माल सप्लाई कर और कृषि उत्पादन की खरीद-बिक्री कर उत्पादकता बढ़ने का अधिकांश फायदा हथिया लिया। देहाती इलाकों में जो समृद्धि आयी वह विषम थी, कुछ लोग अत्यधिक खुशहाल हुए और कुछ जस के तस बने रहे या उनकी हालत और भी बिगड़ गयी। बड़े और मध्यम किसानों को काफी फायदा पहुंचा लेकिन छोटे व सीमांत किसानों की दशा खाद, बीज आदि की कीमतें बढ जाने के कारण और भी बिगड़ गयी, उन पर देनदारी बढ़ती गयी। बेरोजगारी भी बढ़ी और खासकर शिक्षित युवकों के बीच तो काफी। खुशहाल वर्ग उपभोक्तावाद का शिकार होता गया और उसने तरह-तरह के उपकरण और सामान का संग्रह करना

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

शुरू किया। दुनिया-भर में सम्पन्न लोग धार्मिक आचरण त्यागने लगते हैं और पंजाब का सम्पन्न वर्ग इस मामले में कोई अपवाद नहीं था। सम्पन्न सिख अपने लम्बे केश काटने लगे और अपनी दाढ़ियों की कांट-छांट करने लगे। इसके साथ शराब, नशीली दवाओं और सिगरेट का चलन भी बढ़ा। धनी अपने ऐश्वर्य का दिखावा किये बिना नहीं रह पाते। उनके दिखावे से गरीबों के, जिनकी पंजाब में संख्या 45 प्रतिशत है, मन पर चोट लगना स्वाभाविक था। ऐसे में धनी लोगों को धर्म-विरोधी मानना गरीबों के लिए मुश्किल नहीं था। असंतोष के इस वातावरण को इस बात से भी बहुत ज्यादा बल मिला कि पंजाब में मोटे तौर पर किसान सिख हैं और व्यापारी हिन्दू। किसान और व्यापारी का टकराव असंतोष को बढ़ाने में सहायक इसलिए भी हुआ कि व्यापारी किसान की कीमत पर ही मुनाफा करते हैं।

ऐसी परिस्थितियों में गरीब सिख भिंडरावाले के उपदेश और उनके द्वारा दी जाने वाली सिख पंथ के परम्परागत आचरण के प्रतिकूल आचरण की तीव्र निन्दा से काफी प्रभावित होने लगे। उन्हें यह लगने लगा कि उनकी दुर्दशा धार्मिक आचरणों का पालन न करने की वजह से है। वे गरीबों और अमीरों तथा गांवों और शहरों के बीच मौजूदा विषम आर्थिक सम्बन्ध के बजाय बुराई की सारी जड़ परम्परागत धार्मिक आचरण न करने वालों में देखने लगे। यह कोई अचरज की बात नहीं कि पंजाब के बहुत-से नक्सलवादी, जो एक समय धनियों के खिलाफ घृणा से उफन रहे थे, इस प्रकार की 'धार्मिकता' के शिकार हो गये। वे धनियों की बुराइयों को गैर सिखों और धार्मिक आचरण न करने वाले सिखों में ढूंढ़ने लगे। एक तरह से धनियों, गैर सिखों और धार्मिक आचरण न करने वाले सिखों को उन्होंने अपने मन में एकाकार कर डाला। वे यह मानने लगे कि अगर समाज में धार्मिक आचरण व सिद्धांतों की प्रतिष्ठा हुई तो सारी समस्याएं हल हो जायेंगी। चूंकि उनकी सारी प्रतिक्रिया शुरू से ही भावुकताभरी थी इसलिए इस तरह का मत-परिवर्तन कठिन भी नहीं था।

इसी स्रोत से हिंसा के सिद्धांत व उन्माद को बढ़ावा मिला। अकालियों के नेता ज्यादातर मध्यम या उच्च वर्ग के किसान हैं, उनकी (अकालियों की) 1920 से शांतिपूर्ण अहिंसक आंदोलन की परम्परा भी रही है। भिंडरावाले को इस परम्परा से कोई लगाव नहीं था। वे तो कई शताब्दियों के पहले की उस सशस्त्र लड़ाई की परम्परा को, जिसे कुछ गुरुओं ने स्वयं स्थापित किया था, फिर से जगाना चाहते थे। यह सब पुनरुत्थानवादी आंदोलन के पुरातन पंथी तौर-तरीकों के अनुकूल था। इससे पुनरुत्थानवादियों में एक प्रकार का विवेकहीन जोश-खरोश भी पैदा हुआ। ऐसी ही उत्तेजनात्मक भावभूमि में एक अनजान धर्मोपदेशक एक चमत्कारी और करिश्माई व्यक्ति बन बैठा।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

3

'बहादुर' फौज की करतूतें

सैनिक कार्रवाई के दौरान पंजाब में जो कुछ हुआ वह आजाद भारत के इतिहास में एक काला धब्बा है। हमारी 'बहादुर' फौजों ने, जिनकी देशभक्ति और बहादुरी की प्रशंसा करते हमारी सरकार, विरोधी पार्टियां और अखबार अघाते नहीं हैं, वहां पर लूटपाट की, निर्दोष लोगों को थोड़ी-सी भी शंका होने पर पकड़ा और यातनाएं दीं, गोलियों से भूना, सैकड़ों बूढ़ों, बच्चों और औरतों को मौत के घाट उतारा और नृशंसता की नई मिसालें कायम कीं। पूरी सैनिक कार्रवाई को एक विदेशी शत्रु पर आक्रमण के रूप में ही संचालित किया गया। इसमें फौज के तीनों अंगों (वायुसेना, नौसेना और सेना) का उपयोग किया गया और लगभग एक लाख सैनिकों ने इसमें हिस्सा लिया। ट्रंकों, मशीनगनों, बम्बों, जहरीली गैसों और हैलीकाप्टरों का इस्तेमाल इसमें किया गया। इस विशाल जखीरे वाली विशाल फौज के सामने थे चंद उग्रवादी और अनेकों निहत्थे लोग।

निहत्थे और नागरिक आबादी के समक्ष अत्याबार करके फौज ने अपनी 'बहादुरी' दिखाई। यह वही फौज है जो चीन की फौजों द्वारा आक्रमण करने पर 1962 में बिना लड़े ही भाग खड़ी हुई थी। लगता है हमारी फौज सिर्फ अपने से कमजोर शत्रु या निहत्थे लोगों को मारने में ही सक्षम है। जिस फौज को लूटपाट करना, बलात्कार करना, निहत्थे लोगों को यातनाएं देना और मारना सिखाया गया है उससे यही उम्मीद की जा सकती है। उत्तर-पूर्व भारत में फौज पिछले अनेक सालों से यही करती आ रही है। श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार देश के अन्दर राजनीतिक उद्देश्यों के लिए उपयोग करके और नागरिक आबादी के खिलाफ उपयोग करके फौज का चरित्र इसी प्रकार बना रही है।

स्वर्ण मन्दिर में जो हत्याकाण्ड हुआ वह बरबस जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड की याद दिला देता है। जलियांवाला बाग से भी ज्यादा भयानक शायद यह है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 30 जून तक पंजाब में सैनिक कार्रवाई में 554 लोग (सैनिकों को छोड़कर) मारे गए और 121 घायल हुए जिसमें अकेले स्वर्ण

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

मन्दिर में तीन दिन के अन्दर 493 मारे गए और 86 घायल हुए। गैर-सरकारी अनुमानों के अनुसार ये संख्याएं हजारों में होनी चाहिए। जलियांवाला बाग के काण्ड में मरने वालों की सरकारी संख्या 379 थी, जबकि गैर-सरकारी आंकड़े इससे कई गुना हैं। फर्क यह है कि जलियांवाला बाग में हत्याएं कराने वाला एक विदेशी सरकार का अफसर था, स्वर्ण मन्दिर में हत्याएं करने वाली हमारी अपनी फौज थी। उस विदेशी सरकार ने हत्याकाण्ड की जांच करने के लिए एक जांच आयोग बिठाया, हमारी सरकार निष्पक्ष जांच के लिए तैयार नहीं क्योंकि इसमें स्वयं उसकी सीधी भागीदारी है। यदि कोई निष्पक्ष जांच कभी हुई तो इस हत्या-काण्ड के कई दिल दहलाने वाले पहलू सामने आएंगे।

सरकार ने कर्फ्यू और सेंसरशिप के माध्यम से पूरी कोशिश की कि सैनिक कार्रवाई के बारे में सच्चाई बाहर न आ पाए। लेकिन जो थोड़ी-बहुत खबरें बाहर आ रही हैं वे ही उसकी असलियत की झांकी देने के लिए काफी हैं।

केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल के बम्बई के ग्रुप कमाण्डेट सरदार सिमरनजीत सिंह मान, आई० पी० एस०, ने 16 जून, 1984 को पंजाब में सैनिक कार्रवाई के विरोध में अपना इस्तीफा भेजा। 2 जुलाई, 1984 को इस सम्बन्ध में उन्होंने राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह को एक पत्र भेजा। इस पत्र (डी० ओ० नं० सी० आई० एस० एफ० / जी० एच० बी० / एस० एस० एम० / 84) की एक प्रति संयोग से हमें मिली है। इस पत्र में सरदार सिमरनजीत सिंह मान ने निम्न आरोप लगाए हैं—

(1) पंजाब में फौज के दस्ते 30 मई, 1984 को रेल, रोड और हवाई रास्तों से भेजना शुरू हो गये थे और 2 जून तक सारी फौज जमा हो गई थी। यह सोचा गया था कि सैनिक कार्रवाई 3 जून को की जाएगी और 3 जून को जब गुरु अर्जुनदेव के शहीदी दिवस पर भारी संख्या में सिख लोग स्वर्ण मन्दिर में इकट्ठा होंगे उन्हें सबक सिखाया जाएगा। किन्तु सौभाग्य से मेजर जनरल जौनवाल ने, जिनकी 15 डिवीजन सबसे पहले वहां लगाई गई थीं, अपने ही नागरिकों का कत्ले आम करने से इंकार कर दिया। तब मेजर जनरल बरार को जिम्मा सौंपा गया, किन्तु उनको अपने दस्ते तैनात करने में दो दिन लग गए और इस बीच अधिकांश तीर्थयात्री वापस लौट गए और इतिहास का सबसे बड़ा हत्याकाण्ड घटित होने से बच गया।

(2) फौज को आदेश थे कि वे किसी को बंदी न बनाएं, हत्याओं पर ध्यान दें। सैनिक कार्रवाई के बाद 8 से 12 साल की उम्र के 100 बच्चे जो भिंडरावाले के दमदमा साहिब टकसाल से थे, को पंक्ति में खड़ा करके गोली से उड़ा दिया गया।

(3) स्वर्णमन्दिर से पकड़े गए सिखों की पगड़ियां उतारकर उनके हाथ बांधे

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

गए और उन्हें फिर मशीनगनों की गोलियों से भून दिया गया। लाशों को, जिनमें तीर्थयात्री, बच्चे और औरतें भी थे, ट्रकों में भरकर गोबिन्दगढ़ फोर्ट मैदान में लाया गया और उनके ढेर पर किरोसीन छिड़क कर आग लगा दी गई। ये लाशें पूरी तरह नहीं जल पाईं, और वे दो हफ्ते तक सड़ती रहीं।

(4) स्वर्ण मंदिर के पड़ोस में रहने वालों को अपने मकान खाली करने के लिए सिर्फ पांच मिनट दिया गया। इस आदेश को पूरा करने की हड़बड़ी में बहुत-सी औरतें और बच्चे दूसरी और तीसरी मंजिलों से कूद पड़े और घायल हो गए या मर गए। कुछ औरतें अपने बच्चों के साथ जा नहीं पाईं और वहीं रह गईं। चूंकि पानी की सप्लाई काट दी गई थी, उन्होंने अपने बच्चों को जिंदा रखने के लिए नालियों में बह रहे खून में पेशाब मिलाकर पिलाया।

(5) 9 जून, 1984 को सुबह 11 बजे फ्लाइट लैफ्टिनेंट सुखिदर सिंह नं० 9764, जो कि वायुसेना के लड़ाकू पायलट रह चुके हैं और जिन्हें भारत-पाक युद्ध में बहादुरी दिखाने के लिए तमगे मिले थे, को फौज के जवानों ने अमृतसर में पकड़ा और बगैर उन्हें अपना परिचय देने का मौका दिए मुक्कों, लातों और राइफल की बटों से मारा और फिर मरा समझकर नाली में छोड़ दिया।

सरकार सिमरनजीत सिंह मान के फौज की नृशंसता के इन आरोपों पर आसानी से विश्वास नहीं होता, लेकिन उनकी कुछ पुष्टि अखबारों में छप रही छिटपुट खबरों से होती है। 2 सितम्बर, 1984 को ट्रिब्यून में छपी एक खबर के अनुसार हिमाचल प्रदेश के पाओंटा साहिब से स्वर्ण मंदिर आए 12 बच्चों को फौज ने आतंकवादी बताकर पकड़ा, उन्हें जेल में रखा और उन्हें यातनाएं दीं। उनमें से 6 बच्चों को सर्वोच्च न्यायालय के आदेश पर 31 अगस्त को छोड़ा, तीन का कोई अता-पता नहीं है, दो अभी भी जेल में हैं और एक स्वर्ण मंदिर में मारा गया। जनसत्ता, 30 अगस्त, 1984 में छपी खबर के अनुसार, "दो साल से 14 साल तक की उम्र के 17 बच्चे इस साल जून में स्वर्ण मंदिर में सैनिक कार्रवाई के दौरान गिरफ्तार किए गए। इनमें बच्चियां भी हैं।...इन सभी बच्चों को अपराध दंड संहिता की धारा 107/151 के अधीन गिरफ्तार किया गया। अब इन पर भारतीय दंड संहिता की धारा 188 के अधीन शांति भंग करने के आरोप में मुकदमा चलाया जा रहा है। ताज्जुब की बात है कि दो से 14 साल के इन बच्चों को आतंकवादियों की तीन श्रेणियों ए० ए० ए०, बी० बी० बी०, व सी० सी० सी० में बांटा गया है। पुलिस सूत्रों के अनुसार इस वर्गीकरण का अर्थ है—'बहुत गंभीर किस्म के आतंकवादी', 'कम नुकसानदायक आतंकवादी' और 'सामान्य किस्म के आतंकवादी'।"

इण्डियन एक्सप्रेस (25 जुलाई 1984) के संवाददाता ने पता लगाया है कि, "स्वर्ण मंदिर परिसर में मारे गए कुछ व्यक्तियों की लाशें जब 10 जून को पोस्ट-

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

मार्टम के लिए लाई गई तो उनके हाथ पीछे बंधे हुए थे। पुलिस के पास 540 पोस्टमार्टम की रिपोर्ट हैं। उनमें से 70 रिपोर्टों को पढ़ने पर तीन ऐसे मामले मिले। इन तीनों व्यक्तियों की पहचान नहीं हो सकी। उनकी उम्र लगभग 25 साल थी। "क्या इसका मतलब यह नहीं कि अपने कब्जे में लेने और गिरफ्तार करने के बाद फौज ने इन लोगों की हत्या की? यदि सारी पोस्टमार्टम की रिपोर्टों को पढ़ने का मौका मिले और अन्य सूत्रों से भी छानबीन की जाय तो ऐसे पता नहीं कितने मामले मिलेंगे।

फौज द्वारा बड़े पैमाने पर ज्यादतियों और हत्याओं का संदेह इसलिए भी होता है कि स्वर्ण मंदिर की सैनिक कार्रवाई में मारे गए लोगों की जो संख्या बताई गयी है वह घायलों की संख्या से कई गुना ज्यादा है। अवकाश-प्राप्त एयर मार्शल अरजुन सिह का कहना है कि आम तौर पर यह माना जाता है कि एक सैनिक कार्रवाई में जितने लोग मारे जाएंगे उससे चार गुना ज्यादा घायल होंगे। लेकिन यहां अनुपात ठीक उल्टा है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार जितने लोग घायल हुए उससे पाँच-छह गुना लोग मारे गए।

पंजाब से लौटी एक टीम के सदस्य अरविंद मोहन ने बताया कि सैनिक कार्रवाई के वक्त स्वर्ण मंदिर के जूते रखने वाली जगह में लगभग 4000 जोड़ी जूते रखे थे। यदि सरकारी आँकड़ों के अनुसार 493 घायल हुए और 86 घायल हुए तो बाकी 3400 लोग कहां गए? हो सकता है उनमें से कुछ बचकर भाग निकलने में सफल हो गए हों, लेकिन फिर भी बाकी कहां गए?

कुमायूं रेजिमेंट के एक नायक ने, जिसने सैनिक कार्रवाई में भाग लिया, प्रोब इंडिया (अगस्त 1984) को बताया, "अंधेरे में जो भी दिखता हम उसे गोली मार रहे थे। इस तरह से आदमी और औरतें मारे गए।...6 जून की सुबह स्वर्ण मंदिर का अहाता एक कब्रिस्तान बन गया था। चारों तरफ लाशें पड़ी थीं। सूरज चमक रहा था और लाशों की बदबू सही नहीं जा रही थी।...लगभग 1500 नागरिक मारे गए थे। उनकी लाशों को ट्रालियों में भरकर ले जाया गया। बहुत-सी लाशों को नदी में फेंक दिया गया।"

दिनमान (29 जुलाई-4 अगस्त, 1984) में डा० महीपसिंह ने अमृतसर में अपने बहनोई के मारे जाने की दर्दनाक घटना का वर्णन किया है, "स० चतरसिंह (मेरे बहनोई) नित्य दरबार साहिब में माथा टेकने जाते थे। दरबार साहिब में नित्य माथा टेकने जाना अमृतसर के असंख्य लोगों की दिनचर्या रही है। 3 जून को वह मत्था टेकने गए थे। उसी दिन संपूर्ण पंजाब में कर्फ्यू लग गया। किसी तरह वह घर वापस आ गये। 4 जून की भोर से ही सेना की ओर से दरबार साहब परिसर में उग्रवादी ठिकानों पर गोलाबारी शुरू हो गई। उस दिन अमृतसर में कोई चिड़िया भी बाहर नहीं फड़क रही थी। 5 जून की प्रातः वह अपने

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

तिमंजिले मकान की बरसाती की छत पर चढ़ गए। वहां से हर मंदिर साहब का सुनहरी गुंबद साफ दिखाई देता है। उन्होंने सोचा, यहीं से दर्शन कर लें। साथ में उनका बीस वर्ष का भतीजा और सत्रह वर्ष का बेटा भी था। गोलियों की आवाज से सारा शहर गूंज रहा था। नगर की सभी ऊंची इमारतों पर अपने मोर्चे बनाए सुरक्षा सैनिक उस हर किसी को उग्रवादी मानकर अपनी बंदूक का निशाना बना रहे थे जो उनकी नजर की सीमा में आ जाता था। कहीं से एक गोली आई और स० चतरसिंह की कनपटी को चीरती हुई निकल गई। वह छत पर ही औंधे मुंह गिर गए।"

फौज द्वारा लूटपाट की खबरें भी सामने आ रही हैं। स्वर्ण मंदिर के पास के जितने घरों के लोगों को हटा दिया गया था, उन घरों से तलाशी के नाम पर बहुत सारी चीजें गायब कर दी गईं। जनसत्ता (2 सितम्बर, 1984) के अनुसार पुलिस के पास आई शिकायतों में छत के पंखे, टेबल फैन, पलंग, स्टोव, रेडियो, टेप रिकार्डर, सिलाई मशीनें, गलीचे, सोने के आभूषण और नकदी गुम होने की शिकायतें हैं। ब्रिगेडियर एच० एस० बेदी द्वारा की गई एक ब्रिगेड की 'अति गोपनीय' जांच-पड़ताल में सैनिकों के पास से एक वीडियो कैसेट, कुछ टी० वी० सेट, ट्रांजिस्टर, टेप रिकार्डर, घड़ियां व बर्तन बरामद हुए हैं। बी०एस० एफ० के कम से कम एक जवान से सोने के आभूषण भी बरामद हुए हैं। 28 जून, 84 को जनसत्ता में चांदनी चौक, दिल्ली के रिम्पी का एक पत्र प्रकाशित हुआ है जिसमें लिखा है, "पटियाले में मेरे फूफाजी, जो कि ऐतिहासिक गुरुद्वारा दुःख निवारण के मुख्यग्रंथी हैं, के घर 5 जून रात एक बजे कुछ सैनिक दरवाजा तोड़कर अन्दर घुस गए तथा सभी आदमियों, औरतों व बच्चों को घरों से बाहर निकाल दिया और अंदर से नकद रुपये व गहना इत्यादि उठाकर ले गए।"

और अंत में, फौज ने किस प्रकार पंजाब के गांवों से 'आतंकवादियों का सफाया' किया, उसका एक उदाहरण एक पत्रकार अजित परमार ने पंजाब के खुद्दा अली शेर नामक गांव से लिखकर भेजा जो प्रोब इंडिया के जुलाई, 1984 के अंक में प्रकाशित हुआ है। पूरा विवरण हम यहां ज्यों का त्यों दे रहे हैं :

"कोई भी हिला-डुला तक नहीं। अगर कोई चाहता तो भी उसके लिए हिलना-डुलना असंभव था क्योंकि स्टेनगन और स्वचालित राइफलों से लैस सेना के जवानों और अफसरों ने गांव में घुसते ही हुक्म दिया था, "जहां हो वहीं खड़े रहो। अगर जरा-सा भी हिले-डुले तो खैर नहीं।" जो लोग इस हुक्म पर आपत्ति करने की बात सोच सकते थे, उन्हें तुरंत ही पता लग गया कि आपत्ति का क्या नतीजा होगा क्योंकि जवान और अफसर जरा-से भी विरोध की भनक मिलने पर घूंसों की बौछार और बंदूकों के कुन्दों से प्रहार करने लगते थे।

सेना के लगभग 500 अफसरों और जवानों की टुकड़ियां रात के अंधेरे में

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

पौने बारह बजे के लगभग अचानक गांव में आ धमकी थीं। उनके आने का उद्देश्य था सिख उग्रवादियों को तलाशना। देखते-देखते गांव की संकरी गलियों में चारों तरफ सेना के जवान दिखाई देने लगे। वे सात ट्रकों और स्पोटलाइट वाली दो जीपों में लदकर आए थे और लड़ाई की पूरी वर्दी और साज-सामान से लैस थे।

गांव का नाम था खुद्दा अली शेर और घटना है 5 जून 1984 की। खुद्दा अली शेर चण्डीगढ़ से एकदम सटा हुआ एक गांव है। जिस समय स्वर्ण मंदिर में आपरेशन ब्लू स्टार शुरू हुआ लगभग उसी समय खुद्दा अली शेर में भी कार्रवाई शुरू हुई। सेना के लोगों के पास संदिग्ध उग्रवादियों की एक सूची थी। उन्होंने गांव के कुछ लोगों को पकड़ा और उन्हें गांव के मैदान में ले गए। उन्होंने सूची में से एक-एक कर संदिग्ध व्यक्तियों के नाम पढ़ना और गांव वालों से उनके बारे में पूछना शुरू किया। यह पूछताछ बड़ी ही निर्दयता के साथ की गई। जवाब देने में जब कोई तनिक भी हिचकिचाता था या सेना के लोगों को जरा-सा भी शक होता था कि उनसे कुछ छिपाया जा रहा है तो वे पिटाई शुरू कर देते थे। सूची के लोगों में से सिर्फ एक आदमी गांव में पाया गया। इस व्यक्ति का नाम था गुरदयाल सिंह। 32 वर्षीय गुरदयाल सिंह रेड क्रास का कर्मचारी और उसके पिता गांव के सरपंच रह चुके हैं।

एक ग्रामीण जवानों की टुकड़ी को गुरदयाल सिंह के घर ले गया। घर के लोगों, जिनमें गुरदयाल के बूढ़े चाचा भी थे, के साथ जवानों ने बुरा व्यवहार किया। घर की पूरी तलाशी ली गई। प्रत्यक्षदर्शियों ने बताया कि घर में कुछ भी आपत्तिजनक नहीं मिला। फिर भी गुरदयाल सिंह को जवानों ने गिरफ्तार कर लिया। ग्रामीणों के अनुसार (जिनमें हिन्दू काफी हैं) गुरदयाल सिंह का एकमात्र अपराध इतना ही हो सकता है कि वह गांव के गुरुद्वारे से लाउडस्पीकर पर अमृतसर गुरुद्वारे के लिए दान देने और सिखों से चण्डीगढ़ गुरुद्वारों में होने वाली विरोध सभाओं में भाग लेने की अपील किया करता था।

गुरदयाल सिंह को गांव के मैदान में ले जाया गया। वहां उसे मारते-मारते बेदम कर दिया गया। मैदान में खड़े गांव वाले बेबस चीखें सुनते रहे। उनकी ओर भी बंदूकें तनी थीं। एक ग्रामीण ने बताया कि गुरदयाल सिंह को राइफल के कुंदों और फौजी बूटों से तब तक मारा गया जब तक कि वह बेहोश नहीं हो गया। होश खोने से पहले उसके अंतिम शब्द थे—'सत श्री अकाल'—जो उसने इस यातना के मूक दर्शक अपने चाचा को कहे।

एक घंटे की इस कार्रवाई के बाद गुरदयाल सिंह की संज्ञाहीन देह सेना के एक ट्रक में लाद दी गई। और फौज का काफिला विदा हो गया। बाद में गुरदयाल सिंह के बारे में सिर्फ इतनी खबर मिली है कि वह मरा नहीं, जिंदा है और पुलिस हिरासत में है।"

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

4

सैनिक कार्रवाई और मानव-अधिकार

"प्रेम और युद्ध में सब कुछ चलता है।" यह कहावत शायद यूरोप में जनमी है क्योंकि यह प्राचीन यूरोप के उन दिनों की याद दिलाती है जब वहां युद्धों में किसी भी प्रकार की मर्यादा का पालन नहीं किया जाता था और युद्ध समाप्ति पर कत्लेआम होता था या पराजित जातियों को गुलाम बना डाला जाता था। प्राचीन यूरोप के इन युद्धों में प्रतिस्पर्धी एक-दूसरे से निर्मम और पशुवत् व्यवहार किया करते थे। किन्तु आज के युग में अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों में ही नहीं गृहयुद्धों के बारे में भी यह कहावत लागू नहीं की जा सकती। उन्नीसवीं शताब्दी में युद्धों में क्रूरता और भीषणता इतनी बढ़ गई कि सरकारों को सशस्त्र सेनाओं के आचरण और व्यवहार के बारे में कुछ कानून-कायदे और मर्यादाएं तय करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस प्रकार युद्धों के बारे में कुछ आचार-संहिताओं और रिवाजों का जन्म हुआ। इस सम्बन्ध में 1899 और 1907 में हेग (हालैंड) में हुए सम्मेलन बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इन सम्मेलनों में भाग लेने वाले राष्ट्रों ने अपने उद्देश्य के बारे में निम्न घोषणा की थी :

"हमारा उद्देश्य सैनिक आवश्यकताओं के दायरे में युद्ध की बुराइयों को कम करना है। इसलिए हमने कुछ ऐसे नियम और मर्यादाएं तय की हैं जिनका प्रतिस्पर्धी सेनाओं द्वारा एक-दूसरे से और नागरिक आबादी के प्रति अपने व्यवहार में पालन किया जाना चाहिए।"

युद्ध में बन्दी बनाए गए लोगों के बारे में सम्मेलन द्वारा तय किए गए नियमों और मर्यादाओं का पालन हो रहा है या नहीं, इस पर निगरानी रखने के लिए सम्मेलन के करारनामे के 14वें अनुच्छेद में "युद्ध के शुरू होने पर प्रतिस्पर्धी देशों में या आवश्यकता पड़ने पर उन निरपेक्ष देशों में जिनमें प्रतिस्पर्धी देशों की सीमाएं लगती हों, बन्दियों के सम्बन्ध में एक सूचना ब्यूरो कायम करने की व्यवस्था की गई है। इस ब्यूरो का काम युद्धबन्दियों सम्बन्धी सारी पूछताछ का जवाब देना होगा। इस ब्यूरो को सभी सम्बन्धित सेवाएं (यानी प्रतिस्पर्धी सेनाओं के विभिन्न

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

अंग) युद्धबन्दियों सम्बन्धी सभी आवश्यक सूचनाएं देंगी ताकि वह (ब्यूरो) प्रत्येक युद्धबन्दी का हिसाब व विवरण रख सके। उसे (ब्यूरो को) बन्दियों के स्थानांतरण और अन्य परिवर्तनों के बारे में ही नहीं, उनके अस्पताल में भरती किए जाने और मृत्यु होने पर उसके सम्बन्ध में भी सूचित करना होगा।"

करारनामे में एक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था उन हथियारों के इस्तेमाल के बारे में भी है जिनसे अनावश्यक रूप से चोट लगती है या जीवन की हानि होती है। करारनामे के अनुच्छेद 23 (ई) में प्रतिस्पर्धियों को अनावश्यक कष्ट पहुंचाने वाले हथियारों व सामान का इस्तेमाल करने से मना किया गया है। यही, नहीं विषाक्त गैसों के इस्तेमाल के खिलाफ भी करारनामे में प्रावधान हैं।

लेकिन दूसरे विश्वयुद्ध में धुरी राष्ट्रों खासकर हिटलरी जर्मनी ने भयंकर अत्याचार किए सो युद्ध के बाद 1949 में जेनेवा में एक सम्मेलन बुलाना पड़ा और उसमें प्रतिस्पर्धियों द्वारा युद्ध में किए जाने वाले आचरण के बारे में और भी सख्त नियम बनाए गए। जेनेवा के करारनामे में (1) किसी भी प्रकार की हत्या करने, अंगच्छेदन करने, नृशंस व्यवहार करने और यातना देने पर (2) बंधक बनाने पर (3) किसी भी व्यक्ति की शख्सियत पर आघात करने खासकर उससे अपमानजनक व अमानवोचित व्यवहार करने पर (4) ऐसी न्यायिक मर्यादाओं व गारण्टियों का, जिन्हें सारे सभ्य लोग अपरिहार्य मानते हैं, पालन किए बिना और नियमित अदालत के फैसले के बिना सजा देने या फांसी चढ़ाने पर प्रतिबंध लगाए गए।

इसके साथ बीमारों और घायलों की देखभाल की भी व्यवस्था की गई। करारनामे में यह कहा गया है कि इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास जैसे निष्पक्ष मानवोपकारी संगठन प्रतिस्पर्धी देशों को अपनी सेवाएं प्रदान कर सकते हैं।

करारनामे के दूसरे अध्याय, अनुच्छेद 12 में यह कहा गया है कि युद्धबन्दियों के साथ उस देश को, जिसके नियंत्रण में वे हों, मानवीय व्यवहार करना चाहिए और लिंग, जाति, राष्ट्रीयता, धर्म, राजनीतिक विचारों या अन्य किसी इसी तरह के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए। उनके ऊपर किसी प्रकार का हमला या उनके खिलाफ किसी प्रकार की हिंसा नहीं की जानी चाहिए। खासकर उनकी हत्या करने, उन्हें नेस्तनाबूद करने, उन्हें यातनाएं देने और उन पर जीवविज्ञान सम्बन्धी प्रयोग करने की कोई कोशिश नहीं होनी चाहिए। उन्हें जान-बूझकर चिकित्सा और देखभाल से वंचित नहीं किया जाना चाहिए और न ही ऐसी स्थितियों में रखा जाना चाहिए जिससे वे छूत के रोगों के शिकार हों।

करारनामे के 17वें अनुच्छेद में कहा गया है कि मृतकों को सम्मानपूर्वक दफनाया जाना चाहिए और सम्भव हो तो उनके धार्मिक रीति-रिवाजों के मुताबिक

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

उनकी अन्त्येष्टि की जानी चाहिए। उनकी कब्रों का सम्मान किया जाना चाहिए। मृतकों की राष्ट्रीयता के मुताबिक कब्रों का सामूहीकरण (ग्रुप) किया जाना चाहिए यानी उनकी कब्रें एक जगह बनाई जानी चाहिए और उनकी समुचित देखभाल की जानी चाहिए और उन पर निशान लगाए जाने चाहिए ताकि उन्हें कभी भी ढूंढ़ा जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए युद्ध शुरू होने के साथ एक सरकारी कब्र रजिस्ट्रेशन सेवा का गठन किया जाना चाहिए जो बाद में जरूरत पड़ने पर उत्खनन (कब्र खोदकर मृतक के शव को निकालने) करने, शव की शिनाख्त करने और शव को स्वदेश भेजने का काम कर सके। यही बातें अस्थियों के बारे में भी लागू होंगी जिन्हें मृतक के देश के रीति-रिवाजों के मुताबिक अन्तिम व्यवस्था न किए जाने तक कब्र रजिस्ट्रेशन सेवा द्वारा संभाल कर रखा जाएगा।

1977 में जेनेवा सम्मेलन के करारनामे के 51वें अनुच्छेद में कुछ और नई व्यवस्थाएं की गईं। इन व्यवस्थाओं द्वारा बल या शक्ति के निरंकुश और अन्धाधुन्ध इस्तेमाल पर और भी प्रतिबन्ध लगाए गए। इन व्यवस्थाओं में कहा गया है कि

"(2) नागरिक आबादी और व्यक्तियों पर (सेना द्वारा) आक्रमण नहीं किया जाना चाहिए। हिंसा व धमकियों की ऐसी कार्रवाइयां, जिनका मुख्य उद्देश्य नागरिक आबादी में आतंक फैलाना हो, नहीं की जानी चाहिए।"

"(4) अन्धाधुन्ध आक्रमण नहीं किए जाने चाहिए। अन्धाधुन्ध वे आक्रमण हैं (क) जो किसी निर्दिष्ट सैनिक ठिकाने पर न किए जाएं (ख) जिनमें युद्ध के ऐसे तरीके या साधन अपनाए जाएं जो किसी खास सैनिक ठिकाने पर केन्द्रित न किए जा सकें (ख) जो युद्ध के ऐसे तरीके व साधन अपनाते हैं जिन्हें करारनामे की व्यवस्थाओं के तहत सीमित या नियंत्रित न किया जा सके (क्योंकि ऐसी स्थिति में सैनिक ठिकानों और नागरिकों या नागरिक वस्तुओं पर बिना कोई फर्क किए प्रहार किया जाता है)"

(5) इनके अलावा निम्न प्रकार के अन्य आक्रमणों को भी अन्धाधुन्ध माना जाना चाहिए :

(क) बमबारी या किसी ऐसे अन्य तरीके से किया जानेवाला वह आक्रमण जो शहर, कस्बे, गांव या किसी अन्य इलाके में कई अलग व भिन्न सैनिक ठिकानों को, जिनमें नागरिकों और नागरिक वस्तुओं का जमाव हो, एक ही सैनिक ठिकाना या लक्ष्य माने।

(ख) ऐसा आक्रमण, जिसमें संयोगवश नागरिकों की जान जाने, उन्हें घायल होने और नागरिक वस्तुओं के नष्ट होने की आशंका हो और जिससे सम्भावित ठोस सैनिक लाभ की अपेक्षा ज्यादा नुकसान हो।

इस तरह हम देखते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध या गृहयुद्ध में ताकतवर शत्रु के

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

अत्याचारों और अन्धाधुन्ध बल व शक्ति के प्रयोग से रक्षा करने के लिए कुछ व्यवस्थाएं की गई हैं। अन्तर्राष्ट्रीय करारनामों के तहत बनाई गई मशीनरी (संगठन) और रेडक्रास जैसी संस्थाएं तो इस बात पर निगरानी रखती ही हैं कि करारनामों की व्यवस्थाओं का पालन किया जा रहा है या नहीं। इसके अलावा प्रतिस्पर्धी देशों ही नहीं अन्य देशों के जनसंचार व प्रचार माध्यम (मास मीडिया) भी लोगों को युद्ध के सभी ब्योरों से परिचित कराते रहते हैं। इससे इस बात की खासी सम्भावना रहती है कि किसी भी पक्ष द्वारा अत्याचार किए जाने पर उसका व्यापक प्रचार होगा और दोषी को अगर सजा न भी दी जा सकी तो कम से कम उसकी दुनिया-भर में बेइज्जती तो होगी ही।

लेकिन फिर भी एक खास किस्म के युद्ध में सचमुच ही सब कुछ चलता है; उसमें हर प्रकार के नियमों व मर्यादाओं का उल्लंघन किया जाता है। ऐसा युद्ध एक स्वेच्छाचारी शासक द्वारा अपनी जनता के विरुद्ध छेड़ा जाता है। अतीत में विभिन्न तानाशाहों द्वारा ऐसे युद्ध छेड़े गए हैं, जिनमें सारी की सारी जनता या उसके एक हिस्से या अल्पसंख्यकों को आतंकित किया गया है और उन पर सशस्त्र हमला किया गया है। चूंकि आतंक और हिंसा की शिकार जनता को युद्ध में भाग लेने वाली सशस्त्र सेना नहीं माना जाता सो उसे अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों की व्यवस्थाओं से संरक्षण भी प्राप्त नहीं होता। लेकिन जहां लोकतंत्र होता है, वहां प्रेस स्वतंत्र होता है और वह जनता को संरक्षण प्रदान करने वाले राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के उल्लंघन की घटनाओं को इस तरह सामने लाता है कि सारा राष्ट्र उनके बारे में सोचने-विचारने को बाध्य होता है। इससे उल्लंघन करने वालों को दण्ड मिलने की संभावना भी बनती है।

स्वर्ण मंदिर और पंजाब के अन्य स्थानों व गुरुद्वारों में जो फौजी कार्रवाइयां हुईं, उनमें फौजी आक्रमण के शिकार लोगों को दुर्भाग्य से किसी भी प्रकार का संरक्षण प्राप्त नहीं था। पंजाब के लोग, ऊपर हमने जिन अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों व रिवाजों की चर्चा की है, उनके संरक्षण से ही सिर्फ वंचित न थे, उन्हें ऐसे कानूनों का भी सहारा प्राप्त न था जिनका एक लोकतांत्रिक देश में सामान्यत: पालन होता है। यही नहीं, प्रेस द्वारा पंजाब में फौज के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय समझौतों व रीति-रिवाजों तथा लोकतांत्रिक कानूनों के विपरीत आचरण करने की घटनाओं की देश और दुनिया को जानकारी देने तक की संभावना भी नहीं थी। सारे पंजाब, और खासकर स्वर्ण मंदिर को एक ऐसी हत्यारी चूहेदानी बना दिया गया था जिसकी गिरफ्त में आ जाने पर लोगों के लिए बच निकलने का कोई उपाय नहीं रह गया था।

सरकार ने सबसे पहले पंजाब से सभी विदेशियों को, जो इस तरह की घटनाओं को देखकर दुनिया को उनकी जानकारी दे सकते थे, निकाल दिया।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

सरकारी प्रेस और प्रचार माध्यमों के प्रतिनिधियों और ऐसे संवाददाताओं को, जो सरकारी राग अलापते हैं, छोड़कर अन्य सभी पत्रकारों को पंजाब छोड़कर चले जाने को बाध्य किया गया। फौजी कार्रवाई के बारे में बिना सेंसर की कोई रपट न छपे और लोगों के सामने तथ्य न आ पायें, इसके लिए सेंसरशिप की कड़ी व्यवस्था लागू की गई। इसके बावजूद इस बात की संभावना तो रह ही जाती थी कि पंजाब में आने वाले या पंजाब से जाने वाले लोग जबानी तौर पर ही सूचनाएं फैला दें सो लोगों का पंजाब में आना और बाहर जाना एकदम बंद कर दिया गया। ट्रेन और बस सेवाओं को स्थगित कर दिया गया। पंजाब के भीतर के लोग भी सत्य को न जान सकें, इसके लिए पंजाब के भीतर भी आवागमन पर कड़े प्रतिबंध लगाये गए और फौजी कार्रवाई के दौरान लगभग सारे पंजाब पर कर्फ्यू लगा दिया गया।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि स्वर्ण मंदिर में की गई कार्रवाई कोई सामान्य पुलिस कार्रवाई नहीं थी, वह तो पूरी तरह एक युद्ध-स्तर पर आक्रमण की कार्रवाई थी, जिसमें, स्वयं श्वेत पत्र के अनुसार सेना के तीनों अंगों—सेना, वायु सेना और नौ सेना—ने भाग लिया था। इस हमले में उन इमारतों को, जो भीतर रहने वाले लोगों को पनाह या सुरक्षा प्रदान कर रही थीं, उड़ाने के लिए तोपों और टैंकों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया गया। इतनी ज्यादा गोलाबारी की गई कि स्वर्ण मंदिर के अहाते के बाहर की बहुत सारी इमारतें नेस्तनाबूद होकर मलबा मात्र रह गई हैं।"[1] जाहिर है कि जेनेवा करारनामे की 1977 की व्यवस्थाओं का 'आपरेशन ब्लू स्टार' (पंजाब की फौजी कार्रवाई का सेना द्वारा दिया गया नाम) का संचालन करने वालों के लिए कोई अर्थ नहीं था। अगर होता तो वे अपनी फौजी कार्रवाई को अपने लक्ष्य तक ही सीमित रखते। उन्हें शायद किसी प्रकार की हिचक या संयम बरतने की आवश्यकता भी महसूस नहीं हुई क्योंकि वे किसी प्रतिस्पर्धी विदेशी सेना के खिलाफ तो कार्रवाई नहीं कर रहे थे बल्कि स्वर्ण मंदिर में मौजूद ग्रंथियों, दर्शनार्थियों, स्त्री-पुरुषों और आतंकवादियों की एक मिली-जुली भीड़ पर आक्रमण कर रहे थे। चूंकि फौजी कार्रवाई के दौरान और उसके कई दिनों बाद तक किसी निष्पक्ष या तटस्थ पर्यवेक्षक को स्वर्ण मंदिर में नहीं जाने दिया गया, हम यह कभी भी नहीं जान पाएंगे कि फौजी कार्रवाई में कितने लोग मारे गए। अधिकांश लोगों का कहना है कि कई हजार लोग मारे गए हैं। मृतकों और हताहतों की सेना जो संख्या बताती है उस पर तो कोई भी विश्वास नहीं करता। चूंकि तथाकथित आतंकवादियों की संख्या किसी

1. मुआवजा देने के लिए लगाये गये सरकारी अनुमानों के अनुसार स्वर्ण मंदिर के आसपास 500 मकान और 300 दुकानें नष्ट हो गयीं।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

भी हालत में तीन-चार सौ से अधिक नहीं हो सकती, इसलिए बड़ी आसानी से यह अंदाज लगाया जा सकता है कि मारे गए अधिकांश लोगों में सामान्य स्त्री, पुरुष और बच्चे ही रहे होंगे।

हमें यह भी पता नहीं है कि सेना के घायल अफसरों और जवानों को छोड़कर अन्य घायलों की चिकित्सा करने की कोई कोशिश की भी गई या नहीं। जिस बड़े पैमाने पर फौजी कार्रवाई हुई, उसे देखते हुए बंदी बनाए गए तथा घायल लोगों की संख्या बहुत ही कम थी।[2] इससे यह संदेह होता है कि सेना ने लोगों को कैद करने और फौजी कार्रवाई में घायल हुए लोगों की जिम्मेवारी लेने के बजाय उन्हें मार डालने की ही नीति अपनायी होगी। चूंकि पंजाब में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं रहने दिया गया था, जो घटनाओं का निष्पक्ष गवाह हो सकता था। हम यह कभी भी नहीं जान सकेंगे कि सेना ने क्या-क्या किया। अगर फौजी कार्रवाई में भाग लेने वाले कुछ सैनिक या सैनिक हमले के शिकार लोगों में से बचे रह गए लोग यह बताने का साहस करें कि उन्होंने सचमुच क्या देखा, तो अलग बात है।

फौजी कार्रवाई के दौरान और उसके बाद मृतकों के शवों को जिस तरह निपटाया गया उससे यह संदेह पैदा होता है कि मृतकों की संख्या काफी थी और उन्हें नृशंसतापूर्वक मारा गया था। हमने ऊपर 1949 के जेनेवा सम्मेलन की (अध्याय 2 अनुच्छेद 17) मृतक सैनिकों के सम्मान को कायम रखने और उनकी पहचान को बनाए रखने वाली व्यवस्थाओं का जिक्र किया है। क्या ऐसी कोई भी व्यवस्था स्वर्ण मंदिर में या अन्यत्र मारे गए लोगों के बारे में की गई? हम यह जानते हैं कि पंजाब में फौजी कार्रवाई में मारे गए लोगों के शव किसी भी रीति-रिवाज का पालन किए बिना नष्ट कर दिए गए और उन्हें सगे संबंधियों को सौंपने की भी कोई कोशिश नहीं की गई। चूंकि सब स्थानों पर कर्फ्यू लगा हुआ था किसी की आगे आकर शव दिए जाने की मांग करने की हिम्मत भी नहीं थी। ऐसे में सिर्फ मृतक या वे ही लोग जो खुद भी मरना चाहते थे, नृशंस फौजी कार्रवाई में मारे गए लोगों के शवों को संभाल सकते थे। शत्रु देश के मृतक सैनिकों को भी सामान्यतः जो सम्मान दिया जाता है, वह भी हमारे मृतक देशवासियों को नहीं दिया गया क्योंकि उन्हें मारने वाले हमारे अपने सैनिक ही थे। चूंकि सरकार ने इन मृतकों को एकदम ही नष्ट कर डालने का निश्चय कर रखा था सो वे ऐसे व्यक्ति भी नहीं रह गए थे जो किसी सम्मान या मानवीय गरिमा के हकदार हो सकते थे। पंजाब के मामले में तो हमारी सरकार ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को

2. एयर मार्शल (रिटा०) अर्जुन सिंह के अनुसार किसी भी फौजी कार्रवाई में आम तौर पर मारे गए और घायलों में एक : चार का अनुपात रहता है अर्थात् जितने लोग मारे जाते हैं उनसे चार गुना लोग घायल होते हैं।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

भी पीछे छोड़ दिया है और उन्हें हमसे ज्यादा सभ्य साबित कर दिया है। जलियांवाला बाग के हत्याकांड के बाद ब्रिटिश सरकार ने उसकी पूरी जांच के लिए हंटर आयोग नियुक्त करने की सौजन्यता तो दिखाई थी, लेकिन हमारी सरकार ने तो आपरेशन ब्लू स्टार के बाद फौजी कार्रवाई में हुई ज्यादतियों को छिपाने की भरपूर कोशिश की है। उसने अखबारों व प्रेस को घटनाओं की पूरी जांच-पड़ताल करने और तथ्यों को जनता के सामने रखने से रोका है।

पंजाब की सारी फौजी कार्रवाई में सबसे ज्यादा चिंताजनक बात यह है कि इसमें सिर्फ इस संदेह पर कि कुछ आतंकवादी स्वर्ण मंदिर और अन्य गुरुद्वारों से अपनी कार्रवाइयां चला रहे थे, बड़े पैमाने पर स्त्री, पुरुष और बच्चों को मार डालने का आदेश दिया गया। हम इस बात को भी नजरअंदाज नहीं कर सकते कि स्वर्ण मंदिर में आश्रय लिए हुए लोगों में से किसी भी व्यक्ति के खिलाफ अपराधी होने का अदालती फैसला नहीं था, सिर्फ पुलिस द्वारा लगाया गया यह अप्रमाणित आरोप ही था कि स्वर्ण मंदिर से आतंकवादी कार्रवाइयां संचालित की जा रही हैं। यही नहीं, फौजी कार्रवाई के एक पखवाड़े पहले तक राजीव गांधी भिंडरांवाले को महज एक धार्मिक नेता बता रहे थे। यदि इन सब बातों को ध्यान में रखें तो कहना होगा कि इतनी बड़ी फौजी कार्रवाई, जिसमें ज्यादातर निर्दोष लोगों की हत्या हुई, महज ऐसे संदेह के आधार पर की गई थी, जो पुलिस और सरकार के बयानों और वक्तव्यों से पैदा हुआ था। सच्चाई तो यह है कि फौजी कार्रवाई के शिकार लोगों के अपराधों के 'प्रमाण' कार्रवाई हो जाने के बाद ही दिए गए हैं। ये प्रमाण भी संदेहास्पद हैं क्योंकि ये सशस्त्र सेनाओं के कथन पर ही आधारित हैं। इस बारे में ध्यान देने की बात यह भी है कि सशस्त्र सेना ने इस बात का पूरा बंदोबस्त कर रखा था कि फौजी कार्रवाई के वक्त स्वर्ण मंदिर के आस-पास भी कोई नहीं रहे, जो यह देख सके कि वहां क्या हो रहा था। यह संभव है कि स्वर्ण मंदिर की फौजी कार्रवाई के दौरान सेना के जो लोग मारे गए, वे लाइसेंस वाले हथियारों से ही मारे गए हों। हो सकता है कि सेना ने स्वर्ण मंदिर में प्रवेश करते वक्त उसमें मौजूद लोगों को उकसाया हो, जिससे उन्होंने उसका हथियारों से प्रतिरोध किया हो।

फौजी कार्रवाई के बाद स्वर्ण मंदिर में भारी मात्रा में शस्त्र पाए जाने की बात खूब जोरों से प्रचारित की गई थी, लेकिन धीरे-धीरे इस प्रचार की असलियत सामने आ रही है और लोगों को पता चल रहा है कि शस्त्रों की बरामदगी का शोर कुछ ज्यादा ही बढ़ा-चढ़ा कर किया गया था। स्वर्ण मंदिर में जो शस्त्र बरामद किए गए उनमें जो सबसे भारी या महत्त्वपूर्ण शस्त्र बरामद किया गया था वह शस्त्र हल्की मशीनगन ही थी। भारी टैंकों व तोपों और बख्तरबंद सैनिक गाड़ियों के सामने हल्की मशीनगनों की क्या बिसात ? वे तो इनके सामने खिलौना

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

ही मालूम पड़ती हैं। यही नहीं, जो शस्त्र बरामद किए गए उनके बारे में भी यह कहना मुश्किल है कि वे आतंकवादियों के ही थे, क्योंकि सरकार या सेना के लिए बाहर से शस्त्र लाकर उनका प्रदर्शन करना जरा-सा भी कठिन नहीं था। हम यह जानते हैं कि बाहर के किसी भी आदमी को स्वर्ण मंदिर के भीतर फटकने भी नहीं दिया गया था। अकाल तख्त के मुख्य ग्रंथी के अनुसार जो फौजी कार्रवाई के प्रत्यक्षदर्शी थे, स्वर्ण मंदिर में बरामद दिखाए गए शस्त्र सेना के तीन ट्रकों द्वारा लाए गए थे।

फौजी कार्रवाई कुल मिलाकर एक निर्मम हत्याकाण्ड ही साबित हुई है। तीन दिन पहले तक यानी 2 जून को श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपने रेडियो और टेली-विजन भाषण में इस बात का कोई संकेत तक नहीं दिया था कि स्वर्ण मंदिर पर फौजी हमला किया जाने वाला है। इसलिए उसमें मौजूद दर्शनार्थियों व तीर्थ यात्रियों के उसे खाली करने का सवाल ही नहीं उठता था। लिहाजा स्वर्ण मंदिर में फौजी कार्रवाई के वक्त जो लोग मौजूद थे उनमें से अधिकांश लोग साधारण नागरिक ही थे। मौजूद लोगों में आतंकवादियों की संख्या बहुत ज्यादा नहीं रही होगी।[3] जाहिर है कि ऐसे लोग किसी सैनिक कमान के तहत आने वाले सैनिकों की तरह योजना बनाकर और मिल-जुलकर अपना बचाव करने में असमर्थ थे। इन लोगों को सेना द्वारा लाउडस्पीकरों से आत्मसमर्पण करने की अपील करने के अलावा कभी इस बात का संकेत भी नहीं दिया गया कि वह किस प्रकार की कार्रवाई करने जा रही है। अगर स्वर्ण मंदिर में मौजूद लोगों को खतरे से पूरी तरह आगाह करवाया जाता तो अधिकांश लोग निश्चय ही मंदिर का अहाता छोड़कर चले जाते। अंतर्राष्ट्रीय युद्धों में भी जब किसी ठिकाने पर सैनिक हमला किया जाता है तो यह आशा की जाती है कि हमलावर सेना कुछ-न-कुछ एहतियाती कदम उठाएगी। लेकिन स्वर्ण मंदिर में मौजूद लोगों और देश की सारी जनता को अंधेरे में रखा गया। किसी को भी पता नहीं था कि सेना क्या करने जा रही है। जब सेना ने अपनी कार्रवाई शुरू कर दी थी तब भी बाहर के लोग और स्वर्ण मंदिर में मौजूद लोग यह सोचने में असमर्थ थे कि किस प्रकार की सैनिक कार्रवाई की जाने वाली है। ऐसी परिस्थितियों में स्वर्ण मंदिर और उसके अहाते में मौजूद लोगों के भागकर बचने की बहुत कम संभावना रह गई थी। जब चारों तरफ कर्फ्यू लगा था, भारी गोलीबार हो रहा था, मकान ढह रहे थे और दोनों तरफ से गोलियां चल रही थीं, तब लोगों के पास इसके सिवाय कोई अन्य चारा नहीं रह गया था कि वे अपने को भाग्य के भरोसे छोड़ दें। ऐसे हालात को देखते हुए

3. गृहमंत्री प्रकाशचन्द्र सेठी कभी भी स्वर्ण मंदिर में छुपे उग्रवादियों की 40 से ज्यादा सूची नहीं दे सके।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

'आपरेशन ब्लू स्टार' इतिहास में एक देश की सेना द्वारा अपने ही देश के निहत्थे नागरिकों की हत्या के सबसे बड़े काण्ड के रूप में जाना जाएगा। हमने यहां 'निहत्थे' शब्द का प्रयोग जानबूझकर किया है क्योंकि दोनों पक्षों की हथियारी ताकत में आकाश-पाताल का अंतर था। इस अंतर को देखते हुए स्वर्ण मंदिर पर किए जाने वाले फौजी हमले का प्रतिरोध करने वाले लोगों को हथियारबंद कहना अतिरंजना ही मालूम पड़ेगा। इस संबंध में वह बात याद आती है जो 1939 में हिटलर के हमले का पोलैण्ड वासियों द्वारा किए जा रहे प्रतिरोध के बारे में गांधी जी ने कही थी। 'एक पोलैण्ड वासी बहन' के पत्र का उत्तर देते हुए गांधी जी ने 18 सितम्बर, 1939 के 'हरिजन' में लिखा था, "अगर हिटलर का प्रतिरोध करने वाले पोलैण्डवासियों में अत्यधिक बहादुरी हो और बहादुरी जितनी ही निःस्वार्थ भावना हो तो इतिहास इस बात को भूल जाएगा कि उन्होंने हिंसा द्वारा अपनी रक्षा की। उनकी हिंसा, अहिंसा के समकक्ष ही मानी जाएगी।"

पंजाब आज मर्माहत है। उसके घावों से खून बह रहा है। सिख अपमानित और लांछित महसूस कर रहे हैं। बाकी देश शायद यह सोचकर मन में सुरक्षा की भावना पाल सकता है कि पंजाब की सैनिक कार्रवाई दोबारा नहीं होने वाली है। लेकिन ऐसा मानना भारी भूल करना होगा क्योंकि इस कार्रवाई के बड़े भयंकर नतीजे हो सकते हैं। यह फौजी कार्रवाई निश्चय ही देश के भविष्य के लिए एक अपशकुन है। अगर हम गहराई से विचार करें तो पाएंगे कि इसने कई नयी आशंकाओं को जन्म दे डाला है।

हम यह जानते हैं कि पंजाब की सैनिक कार्रवाई में सिख रेजीमेंटों को भाग लेने नहीं दिया गया। इसके दो ही अर्थ निकलते हैं—या तो सरकार को इस बात का भरोसा नहीं था कि सिख सैनिक मुस्तैदी से आदेशों का पालन करेंगे या फिर वह यह चाहती थी कि कार्रवाई ऐसे सैनिकों द्वारा की जाए जो सरकारी प्रचार के कारण सिखों के इतने अधिक खिलाफ हो गए हों कि वे सिखों के साथ निर्ममता से पेश आएं। यह पहला मौका नहीं था जबकि सेना को एक पूरा राज्य सौंप दिया गया हो। इसके पहले असम में भी सेना बुलाई गई थी। वहां भी इस बात का ध्यान रखा गया था कि कार्रवाई में भाग लेने वाले सैनिकों में असमिया सैनिक न हों। इस तरह आगे की सैनिक कार्रवाइयों में यह पक्की व्यवस्था की जा सकती है कि जो सैनिक भाग लें उनमें स्थानीय लोगों के प्रति तनिक भी सहानुभूति न हो जिससे वे उनके प्रति उसी तरह का व्यवहार कर सकें जैसा कि हमलावर विदेशी सैनिक जीते हुए देश के लोगों के साथ करते हैं। यह संभव है कि भविष्य में यह सोचकर कि सिख सैनिकों की किसी अन्य राज्य की जनता से सहानुभूति नहीं होगी, उस राज्य के जन-आंदोलन को कुचलने के लिए सिख रेजीमेंट का इस्तेमाल किया जाए। इस तरह हमारी प्रतिरक्षा सेना विभाजित हो जाएगी और वह राष्ट्र

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

की रक्षा करने में सक्षम एक सेना होने के बजाय सिर्फ देश की जनता के खिलाफ इस्तेमाल करने लायक एक सेना होकर रह जाएगी। जैसे-जैसे भारतीय जनता के खिलाफ उसका इस्तेमाल किया जाना बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे लोग उसे शासकों द्वारा दमन करने के एक घृणित औजार के रूप में देखने लगेंगे। दुनिया के बहुत से पिछड़े और गरीब देशों में लोग सेना को शासकों के एक घृणित औजार के रूप में देखने भी लगे हैं। अब तक भारत इससे काफी बचा हुआ था, लेकिन पंजाब की कार्रवाई के बाद वह अपवाद नहीं रह गया है। लोगों का सेना के प्रति सौहार्द न रह जाने पर सेना की देश की रक्षा करने की क्षमता भी घटती चली जाएगी। वह भी राजनीतिक सत्ता के लिए तिकड़म करने वाले अनेक गुटों में से एक गुट हो जाएगी। पंजाब की फौजी कार्रवाई के बाद जनरल वैद्य ने रेडियो और टेलीविजन पर देशवासियों को संबोधित करते हुए जो भाषण दिया था, वह राजनीति से अत्यधिक प्रेरित था। एक सैनिक जनरल का राजनीति से प्रेरित भाषण निश्चय ही एक अशुभ संकेत है। पंजाब की फौजी कार्रवाई से देश के भविष्य, लोकतंत्र के भविष्य और भारतीय जनता के नागरिक अधिकारों के भविष्य के बारे में कई अशुभ संकेत प्रकट हुए हैं।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

5

भ्रामक श्वेत पत्र

श्वेत पत्र एक ऐसा प्रामाणिक दस्तावेज माना जाता है जिसके द्वारा जनता के सामने उससे सम्बन्धित किसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न के बारे में सारी आवश्यक जानकारी रखी जाती है। चूंकि लोकतंत्र में जनता ही राष्ट्र के रूप में प्रभुसत्ता सम्पन्न होती है, इसलिए उसे सभी तथ्यों की जानकारी देना आवश्यक होता है ताकि वह सरकारी नीतियों का मूल्यांकन कर सके और उसके आधार पर आगे की बात सोच सके। सरकारी श्वेत पत्र से इसीलिए यह आशा की जाती है कि वह तथ्यों को बिना किसी लाग-लपेट के रखेगा, उन्हें न तो छिपायेगा और न ही गलत ढंग से पेश करेगा। यही नहीं, वह सरकार के काले कारनामों और गलतियों को भी सामने रखेगा, उन पर किसी किस्म की लीपा-पोती नहीं करेगा। यह बड़े अफसोस की बात है कि भारत सरकार ने पंजाब की स्थिति पर जो श्वेत पत्र जारी किया है, वह इन कसौटियों पर कहीं भी खरा नहीं उतरता।

श्वेत पत्र में जानबूझ कर सबसे ज्यादा झूठ आतंकवादियों के बारे में बोला गया है। उसमें दावा तो यह किया गया है कि पंजाब में फौजी कार्रवाई आतंकवादी और पृथकतावादी तत्त्वों से निपटने के उद्देश्य से की गयी थी, लेकिन यह कहीं नहीं बताया गया है कि पंजाब में आतंकवाद कैसे बढ़ा और उसे रोकने के लिए सरकार ने क्या किया। आतंकवादियों और अकालियों के बीच इस तरह का घाल-मेल किया गया है कि लोगों को आतंकवादी कार्रवाइयों और अकालियों के शांतिपूर्ण आन्दोलन के बीच कोई फर्क नहीं दिखे और वे दोनों को एक-दूसरे से जुड़ा मान लें। सच्चाई तो यह है कि अकाली आन्दोलन सारे समय शान्तिपूर्ण रहा और श्वेत पत्र तक में यह कबूल किया गया है कि अकाली दल ने कभी अलगाववाद और हिंसा का समर्थन नहीं किया था। मजे की बात यह है कि श्वेत पत्र में कहीं भी सन्त भिंडरांवाले के इंका और खासकर ज्ञानी जैलसिंह के साथ ताल्लुकात की चर्चा नहीं की गई है जबकि हम सब यह जानते हैं कि 1980 से सन्त भिंडरांवाले और इंका ने अकाली दल को कमजोर करने के लिए साथ-साथ काम

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

किया था। सन्त भिंडरांवाले के उदय के बारे में शुरू से बताने के बजाय श्वेत पत्र अकालियों की मांगों को गिनाने लगता है, जिससे श्वेत पत्र के लेखकों का इरादा एकदम जाहिर हो जाता है। अकालियों, भिंडरावाले और आतंकवादियों की एक ही साथ बात कर श्वेत पत्र उन्हें मिलाकर एक कर देना चाहता है ताकि असली अपराधी सत्तारूढ़ दल की आतंकवादियों को प्रोत्साहित करने की बात छिपायी जा सके। यही वजह है कि हिंसा को रोकने के लिए उठाए गए सरकारी कदमों के बारे में लगभग चुप्पी ही बरती गई है। यह जाहिर है कि सरकार ने हिंसा को रोकने के लिए कुछ नहीं किया। तथ्यों को छिपाने की कोशिश करने के कारण श्वेत पत्र में घटनाओं का क्रम कितना अधिक असम्बद्ध लगता है, यह बताने के लिए हम यहां लाला जगतनारायण की मृत्यु के बाद श्वेत पत्र में जो घटनाक्रम दिया गया है, उसे उद्धृत कर रहे हैं, "सितम्बर 1981 में लाला जगतनारायण की हत्या की गई थी क्योंकि उन्होंने निरंकारियों की हत्याओं की आलोचना की थी। श्री भिंडरांवाले को हत्या के सिलसिले में 20 सितम्बर 1981 को गिरफ्तार किया गया। बहुत अधिक पैमाने पर हिंसा हुई, जिसमें मेहता चौक के पास पुलिस पर घातक हथियारों से हमला किया गया। पुलिस ने भी गोली चलाई, जिसे न्यायिक जांच में उचित पाया गया।" इस विवरण में इस बात की कोई चर्चा ही नहीं की गई है कि गिरफ्तारी के बाद भिंडरावाले का क्या हुआ। इस चुप्पी का कारण स्पष्ट है क्योंकि भिंडरावाले को दिल्ली के आदेश पर चुपचाप रिहा कर दिया गया था। हत्या की घटना की कभी जांच-पड़ताल नहीं हुई और न ही उसके बारे में मुकदमा किया गया। श्वेत पत्र में किसी भी घटना का सुसंगत विवरण देने की कोशिश नहीं की गई है जबकि घटनाओं का एक-दूसरे से सम्बन्ध बताने और उनका सिलसिला समझाने के लिए एक सुसंगत विवरण देना आवश्यक था।

लोगों को गुमराह करने के लिए जानबूझकर यह भ्रम फैलाने की कोशिश की गई है कि अकालियों के शान्तिपूर्ण आन्दोलन के जोर पकड़ने से आतंकवाद पनपा। यह सभी जानते हैं कि आतंकवाद तभी पनपता है जब लोगों की शिकायतों को दूर करने के लिए किए जाने वाले शान्तिपूर्ण आन्दोलन की सुनवाई नहीं होती। पंजाब में आतंकवाद को तो सरकारी नीतियों से प्रोत्साहन मिला क्योंकि सरकार शान्तिपूर्ण आन्दोलन की कोई सुनवाई ही नहीं कर रही थी। श्वेत पत्र में सत्तारूढ़ दल की उस दोहरी नीति को छिपाया गया है, जिसके तहत एक तरफ शान्तिपूर्ण आन्दोलन को विफल करने और दूसरी तरफ भिंडरांवाले और आतंकवादियों को प्रोत्साहित करने की कोशिश की गई।

श्वेत पत्र में अकाली नेताओं पर यह आरोप तो लगाया गया है कि उन्होंने समझौता नहीं होने दिया, लेकिन इस बात का कोई ब्योरा नहीं दिया गया है किस प्रश्न पर गतिरोध उत्पन्न हुआ और समझौता वार्ताएं टूट गईं। ब्योरों से ही लोग

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

यह जान सकते थे कि समझौता वार्ताओं को असफल करने के लिए कौन जिम्मेवार था।

श्वेत पत्र में 'पंजाब में आतंक व हिंसा' शीर्षक से एक अध्याय है और परिशिष्ट में 1981-84 के दौरान पंजाब में हुई हिंसा की मुख्य घटनाओं की एक सूची है। इनमें कहा गया है कि 4 अगस्त 1982 को जब अकाली मोरचा शुरू हुआ था, तब से 3 जून 1984 तक हिंसा की 1200 से भी अधिक घटनाएं हुईं और इनमें 410 व्यक्ति मारे गए। इस अवधि के दौरान 1 जनवरी 1984 से 3 जून 1984 तक के समय में हिंसा की घटनाएं अत्यधिक बढ़ गईं जब 715 घटनाओं में 298 व्यक्ति मारे गए। इससे यह प्रकट होता है कि पंजाब में 6 अक्टूबर 1983 को राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने के बाद सरकार द्वारा कठोर कार्रवाइयां करने, लोकतंत्र विरोधी अध्यादेश लागू करने तथा पहले से कहीं ज्यादा अर्द्ध-सैनिक बन्दोबस्त करने के बावजूद हिंसा और हत्या की घटनाएं पहले की अपेक्षा ज्यादा तेजी से बढ़ीं। इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि केन्द्रीय सरकार पूरी तरह विफल रही या हिंसा की घटनाओं में उसकी एकदम मिलीभगत थी।

हिंसा की घटनाओं की जो सूची दी गई है उसमें तथ्यों को भयानक ढंग से तोड़ा-मरोड़ा गया है। इन घटनाओं में न जाने किस तर्क से अकालियों के शान्तिपूर्ण विरोध की घटनाओं को भी शुमार कर लिया गया है। यही नहीं, इस बात का भी कोई स्पष्टीकरण नहीं किया गया है कि शान्तिपूर्ण विरोध की घटनाएं किस प्रकार हिंसक घटननाएं थीं। यहां ऐसे कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं :

"26 जुलाई, 1981 : शिरोमणि अकाली दल (लोंगोवाल ग्रुप) ने अमृतसर में 'विश्व सिख सम्मेलन' का आयोजन किया जिसमें सिखों के प्रति कथित भेदभाव पर विशेष जोर दिया गया।"

"24 अप्रैल, 1982 : शिरोमणि अकाली दल द्वारा 'नहर रोको' आन्दोलन का आयोजन किया गया।"

"24 मई, 1982 : शिरोमणि अकाली दल द्वारा पुनः 'नहर रोको' आन्दोलन का आयोजन किया गया।"

"4 अगस्त, 1982 : शिरोमणि अकाली दल ने अपना जोरदार मोर्चा शुरू किया और उसे धर्मयुद्ध की संज्ञा दी।"

"11 अक्तूबर, 1982 : अकाली दल द्वारा 11 सितम्बर की रेल दुर्घटना के शिकार हुए व्यक्तियों की अस्थियों को लेकर आनन्दपुर साहिब से गुरुद्वारा रकाबगंज नई दिल्ली आए मातमी जुलूस की समाप्ति पर संसद भवन के सामने हिंसक प्रदर्शन किया गया।"

अन्तिम घटना में पुलिस द्वारा अन्धाधुंध गोली चलाने से तीन सिख मारे

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

गए थे। यह अकाली दल की नहीं, सरकार की हिंसा थी। श्वेत पत्र में एकतरफा बातें कही गई हैं। वह सरकारी हिंसा की कार्रवाइयों पर कुछ भी नहीं कहता। अकाली दल के सूत्रों के मुताबिक फौजी कार्रवाई के पहले पुलिस गोलीकाण्डों या पुलिस व सुरक्षा सेनाओं से मनगढ़ंत मुठभेड़ों में 250 से भी अधिक व्यक्ति मारे गये हैं।

श्वेतपत्र में 'पंजाब में हिंसा की मुख्य घटनाओं की सूची' में दिल्ली, हरियाणा और राजस्थान की घटनाओं को भी शामिल कर दिया गया है ताकि घटनाओं की संख्या को बढ़ाया जा सके। यहां ऐसे कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं :

"8 मार्च, 1983 : दिल्ली में पालिका बाजार और अन्तर्राज्यीय बस अड्डे पर बम विस्फोट हुआ।"

"21 नवम्बर 1983 : यमुनानगर (हरियाणा) के हनुमान मंदिर के परिसर में बम फेंके गए।"

"26 नवम्बर 1983 : नई दिल्ली में करोलबाग स्थित जेवरात की दुकान से 15 लाख रुपए के जेवरात लूटे गए।"

"26/27 नवम्बर, 1983: चुरू (राजस्थान) में गुरुद्वारे को आग लगाने का प्रयत्न किया गया। गुरुद्वारे के दरवाजे को कुछ नुकसान पहुंचा।"

"15 मार्च, 1984 : किशोर सिनेमा, पानीपत की बुकिंग खिड़की के बाहर विस्फोट हुआ जिसमें एक हिन्दू जख्मी हुआ।"

"28 मार्च, 1984 : दिल्ली गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के अध्यक्ष, श्री हरबंस सिंह मनचन्दा की नई दिल्ली में गोली मारकर हत्या कर दी गई।"

पंजाब में इस अवधि के दौरान अपराधों की जो भी घटनाएं हुईं उन्हें भी हिंसक घटनाओं की सूची में शामिल कर लिया गया है और यह नहीं बताया गया है कि वे किस प्रकार अकाली आन्दोलन या आतंकवादियों की कार्रवाइयों से जुड़ी हुई थीं। यहां ऐसे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं :

"6 अक्तूबर, 1983 : अमृतसर में बन्दूक दिखाकर, एक व्यापारी से 3,000 रुपए छीन लिए गए।"

"8 अक्तूबर, 1983 : जगराँव में बन्दूक की नोक पर एक हिन्दू की दुकान लूटी गई।"

"16 अक्तूबर, 1983 : तरनतारन में बस कंडक्टर और यात्रियों को लूटा गया।"

"17 अक्तूबर, 1983 : अमृतसर में बन्दूक दिखाकर पैट्रोल पम्प के कैशियर

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

को लूटा गया।"

"28 फरवरी, 1984 : 25 तोले का सोने का एक कलस और 2000 रुपए की कीमत की दो घड़ियाँ जिला लुधियाना के जगरांव के जैन समद से चुराई गईं।"

आन्दोलन हो या न हो, आतंकवादी कार्रवाइयां हों या न हों, सामान्य स्थिति में भी अपराध होते रहते हैं। उदाहरण के लिए दिल्ली में केवल 1983 के वर्ष में 244 व्यक्तियों की हत्या हुई (स्टेट्समैन, 1 जुलाई 1984), जबकि श्वेत पत्र के अनुसार पंजाब में 4 अगस्त 1982 से 31 दिसम्बर 1983 की अवधि (लगभग एक वर्ष 5 महीने) में 112 व्यक्ति मारे गए। हर प्रकार के अपराधों को हिंसक व आतंकवादी घटनाओं में शुमार करना और उनके लिए अकाली आन्दोलन को दोषी ठहराना, लोगों को भ्रम में डालने की कोशिश के सिवाय और कुछ नहीं है।

पंजाबी ट्रिब्यून (24 जुलाई 1984) में श्वेत पत्र में दी गई तीन ऐसी घटनाओं के बारे में बताया गया है जिनका झूठ एकदम जाहिर है। श्वेत पत्र में पंजाब में हिंसा की मुख्य घटनाओं की सूची में खानडोली गांव (थाना राजपुरा) की एक घटना के बारे में यह बताया गया है कि 23 फरवरी 1984 को वहां "श्री रामेश्वर ऋषि देव, उसके लड़के और 18 महीने के एक बच्चे की हत्या कर दी गई। एक महिला गम्भीर रूप से घायल हुई।" लेकिन पुलिस के सीनियर सुपरिंटेंडेंट ने 28 फरवरी को बताया कि हत्या के सिलसिले में सुलटी देव ऋषि नामक एक व्यक्ति को, जो पूर्णिया (बिहार) का रहने वाला है, गिरफ्तार किया गया है और उसने अपना अपराध भी कबूल कर लिया है। इस घटना को पंजाब के आन्दोलन से जोड़कर क्या श्वेत पत्र लोगों को गुमराह नहीं कर रहा है ?

श्वेत पत्र में पटियाला की एक घटना के बारे में यह बताया गया है कि 13 मई, 1984 को "अदालत बाजार पटियाला के कपड़ा व्यापारी श्री पवन कुमार को गोली चलाकर घायल कर दिया गया।" लेकिन पटियाला के एस० एस० पी० ने 14 मई को बताया कि डाक्टरी रिपोर्ट के मुताबिक पवन कुमार की मृत्यु गोली से नहीं, किसी भोथरे हथियार से हुई थी।

पटियाला की ही एक और घटना के बारे में श्वेत पत्र में कहा गया है कि 29 मई, 1984 को वहां "स्वर्णकार श्री बासुदेव की दुकान से पिस्तौल दिखाकर कई लाख रुपयों के जेवर लूट लिए गए।" लेकिन पटियाला के एस० एस० पी० ने बताया कि जाँच के बाद पता चला है कि गहने लूटे जाने की कोई घटना नहीं हुई थी और यह एकदम मनगढ़ंत थी।

इस तरह की अनेक गलत सूचनाएं श्वेत पत्र में दी गई हैं। सरकार को जनता

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

को इनके बारे में स्पष्टीकरण देना चाहिए। इस जिम्मेवारी से वह बच नहीं सकती।

श्वेत पत्र यह नहीं बताता कि सरकार ने हिंसा की सारी घटनाओं के बारे में जांच बैठाने का आदेश क्यों नहीं दिया, जबकि अकाली दल के अध्यक्ष सन्त लोंगोवाल ने बार-बार ऐसी मांग की थी। जांच न बैठाने का कारण शायद यह था कि ऐसा करने पर इन घटनाओं में केन्द्र और इंका की मिलीभगत का परदाफाश हो जाता। यहां इस बात का उल्लेख करना आवश्यक लगता है कि सन्त लोंगोवाल ने इंका नेताओं पर, जिनमें एक केन्द्रीय मन्त्री और पंजाब के एक मन्त्री भी हैं, हिंसक घटनाओं में शामिल होने का आरोप लगाते हुए कहा था कि उनके पास अपने आरोपों के प्रमाण के रूप में दस्तावेज भी हैं। लेकिन अब सम्भव है कि ऐसे सभी दस्तावेज स्वर्ण मन्दिर की फौजी कार्रवाई में नष्ट हो गए हैं।

श्वेत पत्र में 'पंजाब और चण्डीगढ़ में फौजी कार्रवाई' अध्याय झूठ और झूठे प्रचार से लबालब है। चूंकि फौजी कार्रवाई वाले क्षेत्र में किसी को भी नहीं, यहां तक कि भारतीय और विदेशी संवाददाताओं को भी नहीं जाने दिया गया था, इसलिए सरकार ने यह सोचा कि वह अपनी मरजी के मुआफिक हर किसिम का झूठ फैला सकती है। श्वेत पत्र में कहा गया है कि फौजी कार्रवाई के दौरान "प्रक्षेपक ढंग के और प्रज्वलनशील हथियारों व गोलाबारूद के इस्तेमाल की पूरी तरह मनाही थी। सैन्य दलों को खास तौर पर यह हिदायत दी गई थी कि वे पवित्र स्थानों में चमड़े की कोई चीज पहनकर न जाएं और पकड़े गए सभी व्यक्तियों के प्रति आदर तथा नम्रता का व्यवहार करें।" (पृष्ठ 33)। श्वेत पत्र में यह भी दावा किया गया है कि "सेना की कार्रवाई में कोई महिलाएं अथवा बच्चे नहीं मारे गए।"(पृष्ठ 37) ये दावे रोज ही झूठे साबित हो रहे हैं क्योंकि अब धीरे-धीरे स्वर्ण मन्दिर और पंजाब भर में सेना द्वारा की गई नृशंस कार्रवाइयों के बारे में तथ्य सामने आ रहे हैं और यह बात अब किसी से छिपी नहीं है कि सेना ने अपनी कार्रवाई के दौरान टैंकों, मोर्टारों और अन्य भारी अस्त्र-शस्त्रों का इस्तेमाल किया था।

तथ्य अपनी कहानी खुद कहते हैं। पोस्टमार्टम की रपटों में कहा गया है कि स्वर्ण मन्दिर से लाए गए मृतकों के हाथ पीछे बंधे हुए थे (इण्डियन एक्सप्रेस, 25 जुलाई 1984)। सर्वोच्च न्यायालय में दायर की गई एक याचिका में स्वर्ण मन्दिर में फौजी कार्रवाई के दौरान मारे गए एक अन्धे रागी की मृत्यु के लिए सरकार से मुआवजा मांगा गया है। (पंजाबी ट्रिब्यून, 25 जुलाई 1984) हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक महीपसिंह के एक नजदीकी रिश्तेदार को अमृतसर में सेना ने उस वक्त गोली से उड़ा दिया, जब वह अपने छज्जे से हरमिन्दर साहब का 'दर्शन' करने की कोशिश कर रहे थे (दिनमान, 29 जुलाई-4 अगस्त, 1984)। एक बच्चे की

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

फौज द्वारा हत्या करने तथा 12 बच्चों पर जुल्म करने की बात अंग्रेजी ट्रिब्यून में 2 सितम्बर 1984 को छपी है। सेना ने लूटपाट की (जनसत्ता में छपा एक पत्र, 28 जून 1984 तथा 2 सितम्बर को जनसत्ता की रपट) और निर्दोष ग्रामीणों को यातनाएं दीं (प्रोब इंडिया जुलाई 1984)।

श्वेत पत्र का मतलब शायद अब आगे से 'सफेद झूठ' हो जाए क्योंकि पंजाब पर भारत सरकार द्वारा जारी किया गया यह श्वेत पत्र तो सफेद झूठों का अम्बार है। श्वेत पत्र में स्वर्ण मन्दिर की फौजी कार्रवाई के घटनाक्रम के वर्णन में एक दूसरे को काटने वाले तथ्य इस तरह दीख पड़ते हैं कि उनका सफेद झूठ एकदम जाहिर हो जाता है। पैराग्राफ 34 (पृष्ठ 38) में कहा गया है कि "8 जून 1984 को उन्होंने (आतंकवादियों ने) एक निहत्थे सैनिक डाक्टर की हत्या कर दी जो कुछ हताहतों का इलाज करने के लिए तहखाने में गया था।" लेकिन यह कैसे सम्भव हो सकता है, जब श्वेत पत्र के ही मुताबिक अकाल तख्त में लड़ाई 8 जून के काफी पहले ही समाप्त हो गई थी, और आतंकवादियों का सफाया हो गया था? श्वेत पत्र में फौजी डाक्टर के मारे जाने का विवरण देने के पहले कहा गया है, "अकाल तख्त में एक-एक कमरे में मुठभेड़ें चलती रहीं और 6 जून को दोपहर 12-30 बजे तक अकाल तख्त को आतंकवादियों से मुक्त करा लिया गया हालांकि नीचे की मंजिल और तहखानों में मुकाबला चलता रहा" (पैरा 28),···"अकाल तख्त के तहखाने और निचली मंजिल से लगातार की जा रही प्रतिरोधी कार्रवाई पर 6/7 जून की रात को काबू पा लिया गया। इस प्रतिरोधक कार्रवाई पर काबू पा लेने के बाद, सैनिकों ने नीचे की मंजिल और तहखाने की पूरी तरह तलाशी लेनी शुरू की। अकाल तख्त के नीचे की मंजिल पर श्री भिण्डरावाले, और अमरीक सिंह के सहित, 34 शव पाए गए।" (पैरा 30)। क्या सरकार इस स्पष्ट विरोधाभास का जवाब देगी जिनसे लगता है कि काफी कहानियां मनगढ़ंत हैं?

श्वेत पत्र सांप्रदायिक उन्माद फैलाने का भी दोषी है। उसमें मारे गए या घायल हुए व्यक्तियों का धर्म बताने में भी भेदभाव किया गया है। हिन्दू घायलों एवं मृतकों के बारे में तो यह बताया गया कि वे किस प्रकार मारे गए और उनका धर्म क्या था, लेकिन सिख मृतकों के बारे में ऐसा नहीं बताया गया है। ऐसे कुछ उदाहरण यहां दिए जा रहे हैं :

"15 मार्च, 1984 : किशोर सिनेमा, पानीपत की बुकिंग खिड़की के बाहर हुए विस्फोट में एक हिन्दू जख्मी हुआ।"

"15-20 फरवरी, 1984 : पंजाब में हुई घटनाओं की प्रतिक्रिया के रूप में, हरियाणा में 15,18,19,20 फरवरी, 1984 को क्रमशः करनाल,

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

कैथल, पानीपत और जींद में कुछ हिंसक घटनाएं हुईं। पुलिस ने हिंसा पर काबू पाने के लिए अश्रुगैस छोड़ी, लाठी चार्ज किया, गोली चलाई और फायरिंग की। पानीपत, कैथल और जींद में हुई घटनाओं में **11 व्यक्तियों की जानें गईं।**"

इन घटनाओं में मारे गए सभी 11 व्यक्ति सिख थे, जिन्हें इंका के गुण्डों और पुलिस ने 'सिखों को सबक सिखाने' के उद्देश्य से मारा था। लेकिन 15 मार्च के विस्फोट में जख्मी एक आदमी का तो धर्म बताया गया पर पानीपत, कैथल और जींद में मारे गए ग्यारह आदमियों का नहीं।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

6

सेना के इस्तेमाल का खतरा

पंजाब में जिस व्यापक पैमाने पर सेना को तैनात किया गया, वह अभूतपूर्व था क्योंकि जब तक किसी विदेशी राष्ट्र से युद्ध नहीं हो रहा हो तब तक देश में सेना इस तरह तैनात नहीं की जाती। सेना को सिर्फ स्वर्ण मंदिर और अन्य गुरुद्वारों पर हमला करने की ही नहीं, सारे राज्य का प्रशासन संभालने की भी लगभग पूरी जिम्मेवारी सौंप दी गई थी। यद्यपि दिखाने के लिए पंजाब में नागरिक प्रशासन था पर असलियत में सेना ही वहां सब कुछ कर रही थी और उसकी आवश्यकतानुसार ही सारा काम किया जा रहा था यहां तक कि सेना के काम की सहूलियत के लिए रेल व अन्य परिवहन सेवाओं को चलाया या रद्द कर दिया जाता था। राज्य में पुलिस नाम की कोई चीज नहीं रह गई थी क्योंकि राज्य पुलिस का 'शुद्धीकरण' किया जा रहा था उसमें से 'असंगठित तत्त्व' निकाले जा रहे थे और उसके सारे कार्य—अपराधियों का पता लगाना, उन्हें गिरफ्तार करना, सिक्योरिटी ड्यूटी करना, परिवहन और लोगों के आवागमन को नियंत्रित करना, रेल पटरियों, नहरों, सरकारी इमारतों,बिजली घरों पर पहरा देना आदि—सेना ने अपने जिम्मे ले लिए थे।

किसी विदेशी राष्ट्र से युद्ध छिड़ने पर भी युद्ध के क्षेत्र से दूर के क्षेत्रों में कुछ ऐसे कार्य होते हैं जो राज्य पुलिस के ही जिम्मे होते हैं क्योंकि यह पुलिस के सिवाय और किसी के काम नहीं माने जाते। सांविधानिक रूप से तो सीमा सुरक्षा बल और केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल जैसे अर्द्धसैनिक दल भी इनको नहीं कर सकते क्योंकि वे सशस्त्र सेनाओं के अंग हैं जबकि ये सारे कार्य राज्य पुलिस के कार्यक्षेत्र में आते हैं। यह बात दीगर है कि सीमा सुरक्षा बल और केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल का उसके कार्यक्षेत्र से बाहर पुलिस के सामान्य कार्य के लिए इतना अधिक इस्तेमाल किया जाने लगा है कि अब उन्हें भी पुलिस बल माना जाने लगा है।

पंजाब को बाकी सारी दुनिया से काट कर सेना के हवाले कर देने की बात नई तो लगती है पर यह उतनी है नहीं क्योंकि नागरिक प्रशासन की मदद करने के

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

नाम पर किसी प्रदेश को सेना के हवाले कर देने का यह पहला अवसर नहीं था। नागालैण्ड में पिछले 30 वर्षों से यह स्थिति चल रही है। वहां सशस्त्र सेनाएं 'नागा विद्रोहियों' को कुचलने में लगी हुई हैं। इन तीस वर्षों में नागा लोगों पर सेना द्वारा भयंकर जुल्म (बलात्कार, हत्या, लूट तथा यंत्रणा देना समेत) किए जा रहे हैं। लेकिन सेना को महानता और पवित्रता का ऐसा दर्जा प्रदान कर दिया गया है कि उसकी आलोचना करना ही राजद्रोह माना जाता है। असम में भी पिछले दो सालों से सेना तथा अर्द्धसैनिक संगठनों ने अपनी उपस्थिति का हमें बहुत ज्यादा एहसास करवाया है। लेकिन पंजाब में सेना का तैनात किया जाना हमें यह बताता है कि राज्य सरकार तथा केन्द्रीय सरकार ने अपने को प्रशासन चलाने के दायित्व से एकदम मुक्त कर लिया है और उनमें लोकतांत्रिक पद्धति व प्रक्रियाओं से देश के साधारण व सामान्य कानूनों के तहत शासन चलाने की कोई क्षमता नहीं बची है। यह एक खतरनाक स्थिति है और इससे यह प्रकट होता है कि हमारे देश के मौजूदा शासक राजनीतिक समस्याओं का राजनीतिक हल करने में असमर्थ होते जा रहे हैं। यह देश में लोकतंत्र के लिए बहुत बड़ा खतरा है। हमारे शासक नागरिक प्रशासन के क्षेत्र में सेना को प्रवेश करने देकर वैसी ही परिस्थितियां पैदा कर रहे हैं जिनमें सेना अंततः राज्य सत्ता पर कब्जा कर लेती है।

गैविन कैनेडी जिन्होंने तीसरी दुनिया में तख्ता पलट 'क्रांतियों' की परिस्थितियों और उनमें सेना की भूमिका का विशद अध्ययन किया है, अपनी पुस्तक में लिखा है :

> "यदि नौकरशाही निकम्मी और भ्रष्ट हो जाए और यह चाहने लगे कि सरकार ऐसी नीतियों पर चले जिससे वह अपने 'मुवक्किलों' (क्लाएंट्स—व्यापारी, उद्योगपति और सरकारी दफ्तरों में अपने काम से आने वाले नागरिकों आदि से आशय है) के साथ आजाद या स्वच्छंद रहे। ऐसे में अगर सेना और पुलिस (भी) सरकारी नीतियों से असंतुष्ट हो या उन्हें यह विश्वास न रहे कि सरकार बढ़ती हुई अव्यवस्था का सामना करने में समर्थ है तो (समाज में) वे (सेना और पुलिस) एक ऐसी एकमात्र शक्ति बन जाएगी जो सरकार के खिलाफ गैर-कानूनी कार्रवाई कर सकने (यानी उसे पलटने) में समर्थ होगी।"[1]

जब सरकार बार-बार सेना को समस्याओं का हल करने के लिए बुलाने लगे तो क्या सेना में सरकार के प्रति यह विश्वास हो सकता है कि वह सक्षम है?

विकासशील देशों में सैनिकवाद के एक और अध्येता कैनेथ फाइडेल ने

1. गैविन कैनेडी, 'तीसरी दुनिया में सेना,' ड्यूक्वर्थ, लंदन, 1974, पृ० 24।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

लिखा है :

"असल में (सैनिक) हस्तक्षेप नागरिक नीतियों और नागरिक नेतृत्व को असफल मानने के भाव के बढ़ने का परिणाम होता है। नागरिक शासन की असफलता को एक सामान्य व साधारण असफलता के रूप में नहीं देखा जाता और ना ही उसे कुछ खास नेताओं की अक्षमता का परिणाम माना जाता है। इसके विपरीत नये सैनिक विद्रोही नागरिक संस्थाओं और असैनिक नेतृत्व को विकास व सार्वजनिक व्यवस्था की समस्याओं से निपटने में अक्षम मानने लगते हैं अर्थात् उनको यह लगता है कि नागरिक समस्याओं और असैनिक नेताओं में ऐसी अन्तर्निहित क्षमता होती ही नहीं कि वे विकास व सार्वजनिक व्यवस्था की समस्याओं से निपट सकें और यही नागरिक संस्थाओं और असैनिक नेताओं की आलोचना वाली प्रेरणा, अतीत के और मौजूदा सैनिक हस्तक्षेपों के बीच के फर्क को उजागर करती है। पहले के सैनिक हस्तक्षेपों में सैनिक विद्रोहियों की प्रेरणा तात्कालिक होती थी लेकिन अब वे नागरिक संस्थाओं और असैनिक नेतृत्व के आलोचक के रूप में भी हस्तक्षेप करते हैं।"[2]

कैनेथ फाइडेल की ये बातें विरोधी दलों के उन नेताओं के लिए चेतावनी है, जिन्होंने पंजाब में सैनिक कार्रवाई की मांग की थी या किये जाने पर उसका स्वागत किया था। उन्हें यह जानना चाहिए कि सेना की दृष्टि में यह सिर्फ इंदिरा गांधी की सरकार की ही नहीं वरन् सारे नागरिक नेताओं की असफलता भी हो सकती है। जब सेना के अफसर इस तरह की बात में विश्वास करने लगते हैं तो उनमें देश के प्रशासन को सीधे अपने हाथ में ले लेने की वासना जग जाती है।

खासकर दुनिया के पिछड़े और गरीब देशों में, जिनमें भारत भी एक है, लोकतांत्रिक ढांचे को कमजोर करने वाली और लोगों के अधिकारों को संकुचित करने वाली हर कार्रवाई सैनिक शासन का मार्ग प्रशस्त करती है। यह जरूरी नहीं कि ऐसे देशों में जहां नागरिक समाज (सिविल सोसाइटी) के अव्यय या अंग—अर्थ-व्यवस्था, प्रशासकीय व्यवस्था और राजनीतिक संगठन—पूर्ण रूप से विकसित है लोकतांत्रिक ढांचे को कमजोर करने वाली और लोगों के नागरिक अधिकारों को संकुचित करने वाली कार्रवाइयों के परिणामस्वरूप सैनिक शासन आये ही लेकिन उन देशों में भी ऐसी कार्रवाइयों से तानाशाही का मार्ग प्रशस्त होने की सम्भावना रहती है। लेकिन पिछड़े देशों में राजनीतिक व्यवस्था के जनाधार एक बार कमजोर पड़ जाने पर सार्वजनिक व्यवस्था को कायम रखने वाली मशीनरी एकदम गड़बड़ा जाती है क्योंकि नागरिक जीवन के अधिकांश

2. कैनेथ फाइडेल, 'विकासशील देशों में सैनिकवाद', ट्रांजेक्शन बुक्स, एन० जे०, 1975, पृष्ठ 4.

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

क्षेत्रों का कोई संगठित रूप नहीं होता। नागरिक अधिकारों के हनन होने और प्रतिनिधि संस्थाओं के क्षीण और निष्प्राण हो जाने से जन-असंतोष को प्रकट करने का कोई माध्यम नहीं रह जाता जिससे उसकी अभिव्यक्ति विध्वंसात्मक ही होने लगती है। चूंकि ऐसी स्थिति में राजनीतिक सत्ता और जनता के बीच संबंध नहीं रह जाता या एकदम कमजोर पड़ जाता है, अधिकारी जन-असंतोष से निपटने के लिए बल-प्रयोग के सिवाय कोई और उपाय नहीं सोच पाते। जहां तक बल-प्रयोग की बात है, पिछड़े और गरीब देशों में सेना ही बल प्रयोग करने लायक होती है क्योंकि वही बल-प्रयोग का सबसे ज्यादा सक्षम और कारगर संगठन है। यही नहीं, विभिन्न प्रतिस्पर्धी स्वार्थों वाले वर्गों में, जो लोकतांत्रिक संस्थाओं के अभाव में अपने टकरावों को दूर करने में या सामंजस्य या मतैक्य स्थापित करने में असमर्थ हो जाते हैं, सेना ही समाज का सबसे अधिक संगठित अंग होती है। इस तरह व्यवस्था ख्वामख्वाह सैनिक शासन की तरफ ढकेली जाने लगती है।

इस तरह के भटकाव के कारण सैनिक शासन की स्थापना होने का उदाहरण ढूंढ़ने के लिए हमें दूर जाने की जरूरत नहीं। हमारे पड़ोसी पाकिस्तान का उदाहरण हमारे एकदम सामने है। आजादी के बाद हमें और पाकिस्तान को प्रशासन व संसदीय परम्पराओं की ब्रिटिश विरासत समान रूप से ही मिली थी, लेकिन पाकिस्तान में लोकतंत्र की स्थापना का संक्रमण काल बहुत दिनों तक बना रहा (अर्थात् वहां इस विरासत के लोकतंत्र में परिवर्तित होने में अत्यधिक देर लग गयी) जिससे वहां लोकतंत्र कायम नहीं हो पाया, वह बीच में ही विफल हो गया। जनता का हिस्सेदारी के अभाव में वहां की व्यवस्था जन-आकांक्षाओं से दूर होती चली गई जिससे ऐसे लोगों की बन आई जो जनता की अनुमति और सहमति प्राप्त किए बिना सत्ता प्राप्त करने की अपनी वासना को पूरा करने के लिए तत्पर थे। इसी प्रक्रिया के विकास के बारे में एयर मार्शल असगर खान ने, जो खुद पाकिस्तानी वायु सेना के प्रधान सेनापति रह चुके हैं, अपनी पुस्तक में लिखा है :

"1950 के दशक के मध्य से ही सेना का सक्रिय राजनीति में प्रवेश हो चुका था। 1953 में पंजाब में मार्शल का लागू किए जाने के बाद सेना को पहली बार सत्ता के स्वाद का मजा आया और उसने पाया कि वह ऐसी उपद्रवी भीड़ों पर जिनको काबू में करना असम्भव जान पड़ता था, बंदूक के जोर पर काबू कर सकती है। ऐसी 'बनी बनाई' (क्लासिकल) स्थिति में अयूब खान में सत्ता प्राप्त करने की वासना का जगना एक सहज व सामान्य प्रतिक्रिया थी जिसे गवर्नर जनरल गुलाम मोहम्मद व प्रतिरक्षा सचिव इस्कंदर मिर्जा से, जो सिर से पैर तक अफसर और अफसरी मिजाज वाले थे, प्रोत्साहन मिला। गुलाम मोहम्मद की

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

लोकतंत्र में कोई आस्था नहीं थी और न ही वह पूर्वी पाकिस्तान के साथ समान व्यवहार करने के पक्षधर थे। उन्होंने अप्रैल 1953 में ख्वाजा नजीमुद्दीन को प्रधान मंत्री के पद से, उस समय जबकि संविधान सभा में उनका बहुमत था और संविधान सभा ने उनकी सरकार का वार्षिक बजट पास ही किया था, बरखास्त कर दिया। यह पाकिस्तान में लोकतंत्र पर पहला प्रहार था जो निश्चय ही सेना के प्रधान सेनापति अयूब खान की सहमति से किया गया था।"[3]

नजीमुद्दीन को बरखास्त किए जाने के बाद उस संविधान सभा को भी भंग कर दिया गया जिसने संविधान का मसविदा बनाते वक्त पाकिस्तान के गवर्नर जनरल के अधिकारों को संकुचित कर दिया था। गवर्नर जनरल गुलाम मोहम्मद ने अपना जो मंत्रिमण्डल बनाया उसमें अयूब खान को प्रतिरक्षा मन्त्री बनाया और उन्हें देश की सेना के प्रधान सेनापति के पद पर भी बने रहने दिया। इसके बाद कई और हेर-फेर हुए लेकिन वे सब ऊपरी ही थे जिससे जनता का कोई भी वास्ता नहीं था और आखिरकार 1959 के राष्ट्रीय असेम्बली के चुनाव के ठीक पहले 1958 में संविधान को रद्द कर दिया गया। इस प्रकार अयूब खान प्रधान-मंत्री बने और 10 वर्षों तक वह पाकिस्तान के भाग्यविधाता बने रहे।

राजनीति में सेना अगर एक बार प्रवेश कर गई तो वह फिर उससे बाहर नहीं निकलती। सैनिक शासन की यह प्रवृत्ति ही होती है कि वह अपने को स्थायी बनाना चाहता है। 1969 में पाकिस्तान की सैनिक राजनीति में पासा पलटा। अयूब खान को गद्दी से हटाकर याहया खान सत्तारूढ़ हो गए। सैनिक राजनीति की यह विशेषता होती है कि उसमें समय-समय पर अचानक पासा पलटता रहता है। अयूब खान पूर्वी पाकिस्तान व पंजाब में 'मार्शल ला' लागू करना चाहते थे क्योंकि उनकी राय थी कि इन दोनों प्रदेशों की कानून व व्यवस्था की स्थिति पर सेना की मदद द्वारा ही काबू पाया जा सकता है। इस बारे में असगर खान लिखते हैं :

"अपने निकटतम सलाहकारों की बैठक के अंत में अयूब खान ने पंजाब और पूर्वी पाकिस्तान में मार्शल ला लागू करने की इच्छा व्यक्त की। इस पर याहया खान ने कहा कि वे राष्ट्रपति (अयूब खान) से एकान्त में मिलना चाहते हैं। जब अन्य सलाहकार बैठक से चले गए तो याहया खान ने अयूब खान (राष्ट्रपति) से कहा कि वे (अयूब खा) जिस कदम को उठाने की बात सोच रहे हैं, वह अपर्याप्त ही नहीं अव्यावहारिक भी है। उन्होंने अयूब खान को कहा कि अगर सेना का इस्तेमाल किया जाना है और 'मार्शल ला' लागू किया जाना है तो सेना के प्रधान

3. मोहम्मद असगर खान, 'पाकिस्तान की राजनीति में सेना के जनरल 1958-82', विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1983, पृष्ठ 4

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

सेनापति की हैसियत में देश के प्रशासन का जिम्मा उन पर (याहया खान) होना चाहिए ताकि वे कारगर ढंग से काम कर सकें। उनकी दलील थी कि मुख्य 'मार्शल ला प्रशासक' की हैसियत ने उन्हें ही सारी सरकारी मशीनरी को निर्देश देने और उस पर नियंत्रण रखने का अधिकार हो। अयूब खान को याहया खान का आशय समझने में बहुत देर नहीं लगी। वह याहया खान के गद्दी छोड़ने के सुझाव को मानने के लिए राजी हो गये। 25 मार्च 1969 को याहया खान मुख्य मार्शल ला प्रशासक बने और उन्होंने देश के प्रशासन का भी जिम्मा ले लिया।"[4]

जून 1984 की फौजी कार्रवाई के बाद पंजाब में जीवन के हर क्षेत्र में सेना की सर्वविद्यमान उपस्थिति को सिर्फ अति उत्साह की अभिव्यक्ति नहीं माना जा सकता। सेना ने एक ऐसे कार्य को करने के लिए जो उसके कार्यक्षेत्र में सामान्य रूप से नहीं आता, भारत सरकार के सामने निश्चय ही अपनी शर्तें रखी होंगी। इसीलिए थल सेनाध्यक्ष जनरल वैद्य का राष्ट्र को सम्बोधित करते रेडियो भाषण देना एक खटकने वाली तथा असामान्य बात है क्योंकि लोकतंत्र में सेना निर्वाचित सरकार के नियंत्रण में रहती है, निर्वाचित सरकार द्वारा दिए गए आदेशों व निर्देशों का पालन करना उसका कार्य होता है। सेना के किसी भी कार्य या कार्रवाई की सारी जिम्मेदारी नागरिक सरकार की होती है। ऐसे में पंजाब की फौजी कार्रवाई के बारे में देश को कुछ भी कहना था तो वह प्रधानमंत्री या किसी जिम्मेदार मंत्री द्वारा कहा जाना चाहिए था, क्योंकि वे अपने वक्तव्य के लिए संसद या जनता के प्रति जवाबदेह हैं। सेना का बड़े से बड़ा अफसर भी संसद या जनता के प्रति जवाबदेह नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में ऐसे बहुत-से प्रश्न अनुत्तरित रह जा सकते हैं जो उसके वक्तव्य के कारण उठ सकते हैं। इन्हीं कारणों से सेना के अफसरों द्वारा सार्वजनिक वक्तव्य देना गलत माना जाता है। इसीलिए जो लोग लोकतांत्रिक नागरिक शासन के पक्षधर हैं उनके लिए यह चिन्ता की बात है क्योंकि इस तरह की चीजों से सेना का दंभ प्रकट होता है।

यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे सेना के अफसरों खासकर युवा अफसरों में राजनीतिक मामलों में दखल अंदाजी करने की प्रवृत्ति के लक्षण दिखाई नहीं देते। लेकिन हमें जो दिखाई पड़ रहा है वह यह है कि देश के राजनीतिक नेता एकदम निकम्मे हो गए हैं। उनका जनता से कोई सम्पर्क नहीं रह गया है और उन्हें जनता की भावनाओं की भी कोई परवाह नहीं रह गयी है। इसलिए जब भी बहुत दिनों से की जा रही किसी मांग पर जनआंदोलन होता है तो वे सेना को बुला बैठते हैं। ये नेता ही सेना को जिसका काम शान्ति के समय अपनी बैरकों में रह कर अपने नियमित फौजी अनुशासन वाले कार्यों को करना और युद्ध के समय

4. मोहम्मद असगर खान—वही।

Prof. Dr. Harnam Singh Shan
Principal Project Investigator
U.G.C. Research Project on Sikhism
505, Sector 16 Chandigarh

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

विदेशी हमले का प्रतिरोध करना है, सत्ता का स्वाद चखा रहे हैं।

सेना को जितना ही अधिक नागरिक प्रशासन का जिम्मा दिया जाएगा उतना ही अधिक उसके राजनीतिकरण का खतरा बढ़ेगा। इसलिए अभी भी सरकार पर इस बात का निरन्तर दबाव डालते रहना जरूरी है कि वह पंजाब से सेना को तुरन्त हटाये। मुश्किल स्थितियों में प्रशासन का जिम्मा सेना को देना तत्काल एक आसान उपाय जरूर हो सकता है, पर इसके भयंकर नतीजे हो सकते हैं। इससे नागरिक अधिकारी बहुत-सी मुश्किल परिस्थितियों का सामना करने की जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं और इससे नागरिक प्रशासन के फालतू और निरर्थक होने का भाव उदय होने लगता है। अगर शासकों में जनता का सामना करने और उसके सामने उपस्थित होने का साहस न हो तो लोकतांत्रिक सरकार की जरूरत ही क्या रह जाएगी? ऐसी हालत में नौकरशाही और सेना, निर्वाचित सरकार के बन्धनों से मुक्त होकर आपस में मधुर सम्बन्ध कायम कर स्वच्छंदतापूर्वक जो चाहे कर सकती है।

मौजूदा स्थिति के इन खतरनाक नतीजों को यदि हमने नजरअंदाज किया तो देश का सैनिक शासन की ओर बढ़ना अवश्यम्भावी है।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

7

धर्मनिरपेक्षता बनाम धर्म में सरकार का हस्तक्षेप

एक लोकतांत्रिक व्यवस्था के सुचारु रूप से चलने के लिए यह जरूरी है कि उसमें विचारों का स्वतंत्र आदान-प्रदान हो और विभिन्न धर्म, जाति, नस्ल, भाषा राजनीति और अन्य प्रकार के समूहों से जन्म लेने वाले विचारों के सम्पर्क में आने का पूरा मौका नागरिकों को मिले। लेकिन यदि राजनैतिक दल किसी एक जातीय या धार्मिक समूह तक सीमित हों तो यह प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है। वह राजनैतिक दल और वह समूह, दूसरे समूहों के सम्पर्क में आने की क्षमता खो बैठता है क्योंकि उसकी धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियां ही नहीं, राजनैतिक गतिविधियां भी एक ही प्रकार के लोगों तक सीमित हो जाती हैं। ऐसे समूह अलग-थलग पड़ जाते हैं, और उनकी संकीर्ण और अनुदार प्रवृत्तियां मजबूत होने लगती हैं और कट्टरता बढ़ने लगती है। इस प्रकार हर समूह दूसरे समूहों से अलग-थलग पड़ जाता है। अपने खोल में सिमटता जाता है और राष्ट्र में एक व्यापक सहमति नहीं पनप पाती जो कि लोकतांत्रिक व्यवस्था का आधार है। इसलिए राजनीति में धर्मनिरपेक्षता का महत्त्व है ताकि विभिन्न समुदायों के सदस्यों को राजनैतिक प्रक्रिया में एक-दूसरे को समझने और सौहार्द्रतापूर्वक साथ रहने का मौका मिल सके।

लेकिन यह आदर्श स्थिति तभी संभव है जब सभी नागरिकों की नागरिक आजादी और लोकतांत्रिक अधिकारों की पूरी गारंटी हो और एक ऐसा माहौल हो जिसमें व्यक्ति को लोकतांत्रिक संस्थाओं से प्राप्त सुरक्षा के अलावा किसी अन्य प्रकार की सुरक्षा की जरूरत न हो। व्यक्ति के मन में यह भी भरोसा हो कि किसी विशेष धर्म का अनुयायी होने या किसी विशेष समुदाय का होने के कारण उसके साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा। लेकिन वास्तविकता यह है कि अच्छी से अच्छी स्थितियों में यह आदर्श पूरी तरह हासिल नहीं हो पाता। हर देश में अल्प-

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

संख्यक समुदायों के मन में एक प्रकार की असुरक्षा का अहसास रहता है कि कहीं उनकी पहचान या अस्मिता बहुसंख्यक समुदाय के समूह में लुप्त न हो जाय। यदि लोकतांत्रिक प्रक्रिया को निर्बाध और सहज रूप से फलने-फूलने का मौका मिले तो संभवत: अल्पसंख्यकों का यह अहसास और डर, निजी क्षेत्रों में उनकी पहचान और परंपरा बनाये रखने की व्यवस्था किये जाने पर, समाप्त किया जा सकता है।

लेकिन स्थिति बिल्कुल उलट जाती है जब लोकतांत्रिक व्यवस्था में कमी हो, या उसे पूरी तरह खोखला कर दिया गया हो, या वह अल्पसंख्यकों के प्रति भेद-भावपूर्ण हो। ऐसी स्थिति में धर्मनिरपेक्षता खत्म हो जाती है और अल्पसंख्यक समुदाय सिकुड़कर अपने खोल में चले जाते हैं और अपने अलगाव को ही अपने हितों की रक्षा करने का एकमात्र उपाय मान बैठते हैं। वे यह सोचते हैं कि कट्टर संघर्ष द्वारा ही वे अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं या चरम स्थितियों में वे सोचते हैं कि पृथक्करण की प्रक्रिया से एक अलग राष्ट्र बनाकर ही अपनी इच्छाओं के मुताबिक अपने समुदाय के जीवन को ढाल सकते हैं। इस तरह के विघटन के खतरे को रोकने के लिए दो शर्तें जरूरी हैं। पहली शर्त यह है कि लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को पूरी तरह फलने-फूलने का मौका दिया जाय। दूसरी शर्त यह है कि प्रमुख राजनैतिक दलों के बीच यह समझदारी हो कि वे चुनावी फायदों के लिए संकीर्ण जातीय और धार्मिक भावनाओं को नहीं उभारेंगी।

अगर लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को सुचारु रूप से चलने का मौका मिलता है तो राजनैतिक दल, चुनाव में समर्थन पाने के लिए, छोटे-से-छोटे समुदायों और अल्पसंख्यकों की कठिनाइयों और शिकायतों की ओर ध्यान देने को बाध्य होंगे। इससे उनकी शिकायतें भी दूर हो सकेंगी। लेकिन यह शर्त दूसरी शर्त से जुड़ी हुई है। यदि कोई दल बहुसंख्यक समुदाय को अल्पसंख्यकों के खिलाफ भड़काने लगता है तो फिर अल्पसंख्यकों के प्रति भेदभाव होने लगता है और इस भेदभाव और बहुसंख्यक समुदाय की मनमानी के खिलाफ सुरक्षा का कोई उपाय अल्पसंख्यकों के पास नहीं रह जाता। यदि बहुसंख्यक समुदाय में साम्प्रदायिक उन्माद पैदा किया जाय तब समाज में न्याय और सहनशीलता खत्म होने लगती है। अमरीका में नीग्रो लोगों और इंग्लैण्ड में एशियाई मूल के लोगों के खिलाफ नस्लवादी दंगों में ऐसा ही हुआ है। जब कोई ताकतवर शासक दल बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यकों के खिलाफ भड़काने लगता है तो इसके नतीजे और भी भयानक हो जाते हैं। जैसे हिटलर ने यहूदियों के खिलाफ जर्मनों को भड़काकर, यहूदियों पर जो अत्याचार किये उसकी मिसाल इतिहास में मिलना मुश्किल है। लेकिन यहूदियों के खिलाफ जर्मनों को भड़काने की नीति अपनाकर हिटलर ने जर्मनों का भी कोई भला नहीं

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

किया। उसने जर्मनों को भी दबाया और अधिकाधिक ताकतवर बनने के अपने उन्माद में उन्हें टैंकों और आग्नेयास्त्रों के आगे झोंक दिया। कोई भी शासक जो अपने कुत्सित इरादों को पूरा करने के लिए बहुसंख्यक समुदाय को अल्पसंख्यकों के खिलाफ भड़काता है, अंततः बहुसंख्यक लोगों के लिए भी विपत्ति लाता है जो इस प्रकार उसके औजार बनते हैं।

धर्मनिरपेक्षता को सबसे बड़ा खतरा उन तानाशाह सरकारों से है जो अपने अधीन असहमति की हर आवाज को दबाने की कोशिश करती हैं। यह खतरा दो प्रकार से पैदा होता है। पहला, जब सरकार अल्पसंख्यकों को बलि का बकरा बनाने लगती है और उन्हें अपनी असफलताओं का जिम्मेवार ठहराती है। दूसरा, जब तानाशाह सरकार लोगों के जीवन के हर क्षेत्र में अपना नियन्त्रण बढ़ाने लगती है तो धर्म राजनैतिक रूप से महत्त्वपूर्ण होने लगता है। तानाशाही सत्ता की पूरी कोशिश यही होती है कि उसके सिवा सत्ता और अधिकार का कोई और केन्द्र न हो। इसलिए वह ऐसे सभी केन्द्रों को या तो नष्ट कर देती है या अपने अधीन कर लेती है। उदाहरण के लिए शिक्षा संस्थाओं को लें। इन्हें सामान्यतः ज्ञानार्जन का स्वतंत्र और निष्पक्ष केन्द्र माना जाता है। लेकिन तानाशाह सरकार इन्हें राज्य के नियंत्रण में ले लेती है और ऐसी शिक्षा देने के लिए मजबूर करती है जो तानाशाह सरकार के मकसद पूरे करे। कला, साहित्य, अखबार और अन्य प्रचार माध्यमों को इसी प्रकार सत्ताधीशों के मुताबिक चलने के लिए मजबूर किया जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों से रिश्ता टूट जाता है। संचार माध्यमों और शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण हो जाने से व्यक्तियों के बीच स्वतंत्र संवाद खत्म हो जाता है। उसका संवाद और संबंध सिर्फ सरकार और सरकारी एजेंसियों से रह जाता है। नागरिक जीवन और लोकतांत्रिक अधिकारों पर इस प्रकार के हमले की स्थिति में, जहां संभव हो, व्यक्ति अपने धार्मिक समुदाय में शरण लेने की कोशिश करता है। तानाशाही व्यवस्था के द्वारा पैदा किये गये अकेलेपन और असुरक्षा को वह अपने धार्मिक समुदाय में दूर करने की चेष्टा करता है। मानवीय भाईचारे से वंचित किये जाने पर वह कम से कम अपने सह-धर्मावलम्बियों के भाईचारे में कोई ठौर पा लेता है। यह स्थिति एक ज्यादा ऊंचे आदर्श से नीचे की स्थिति होती है लेकिन यह उस आदर्श तक कभी पहुंचने के लिए कम से कम खड़े भर रहने की जगह तो देती है। ऐसी परिस्थितियों में धर्म, तानाशाही के खिलाफ लोकतंत्र की रक्षा का एक स्तम्भ बन जाता है। धर्म और धर्मनिरपेक्ष सत्ता की भूमिकाओं में अदला-बदली हो जाती है। तथाकथित धर्मनिरपेक्ष सत्ता स्वाधीनता पर प्रहार करती है और धार्मिक संस्थाएं स्वाधीनता की शरणस्थली बन जाती हैं।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि अधिकांश सर्वसत्तावादी राज्यों और साम्राज्य-

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

वादी शक्तियों ने अपने अधिकृत प्रदेशों में धार्मिक संस्थाओं को नष्ट-भ्रष्ट करके उन्हें अपना औजार बनाने की कोशिश की है ताकि वे उनकी सत्ता की विरोधी शक्तियों के केन्द्र न बन सकें।

जर्मनी में हिटलर ने एक के बाद एक करके कैथोलिकों और प्रोटेस्टेटों को डराने-धमकाने और आतंकित करने की नीति अपनायी ताकि वे नाजियों के इशारे पर चलें। शुरू में जर्मनी की सेना में, जिसकी अभिजातवर्गीय और रूढ़िवादी परंपराएं थीं, अपनी हैसियत और वैधता जमाने में हिटलर को धार्मिक मान्यता और समर्थन की जरूरत पड़ी। उसने प्रधान कैथोलिक पादरी-पारसेली (जो आगे चलकर पोप पायस बारहवें बने) से एक धर्मसंधि की। लेकिन शीघ्र ही कुख्यात हत्या-अभियान—'नाइट आफ द लांग नाइफ'—हुआ जिसमें हिटलर ने कैथोलिक आंदोलन के नेता की हत्या करवा दी। बाद में कैथोलिकों को समझ में आया कि उन्हें बेवकूफ बनाया गया है और कुछ कैथोलिकों ने बड़ी बहादुरी के साथ नाजी शासन का प्रतिरोध किया। ऐसे कैथोलिकों में म्युनिख के स्कोल भाई-बहनों की जोड़ी भी थी जिसने 1943 में हिटलर के खिलाफ शायद पहले छात्र-प्रदर्शन का नेतृत्व किया। कुछ कैथोलिक हिटलर के खिलाफ 1944 के बम-षड्यंत्र में भी शामिल हुए।

प्रोटेस्टेटों की स्थिति भिन्न थी। मार्टिन लूथर के समय से चली आ रही यहूदी विद्वेष और राज्य के साथ लगभग ताबेदारी की हद तक तादात्म्य स्थापित करने की उनकी परंपरा के कारण हिटलर को उनका समर्थन जुटाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। लेकिन ईसाइयत में हिटलर की कोई आस्था नहीं थी। वह तो प्रोटेस्टेंट चर्च को अपना हथियार बनाना चाहता था और उसकी संस्थाओं के शीर्ष पदों पर अपने नामजद व्यक्तियों को बिठाकर सीधा नियंत्रण करना चाहता था। वह इसमें सफल भी हुआ। लेकिन प्रोटेस्टेंट पादरियों की एक अच्छी संख्या ने हिटलर के हस्तक्षेप को नहीं स्वीकार किया और कनफेशनल चर्च बनाया। इससे हिटलर इतना नाराज हुआ कि उसने 1935 में लगभग 700 पादरियों को यातना शिविर में भेज दिया। 1937 में और 800 पादरियों को गिरफ्तार किया गया। आखिर में प्रोटेस्टेंटों और कैथोलिकों दोनों ने ही इस बात को महसूस किया कि तानाशाह शासन का समर्थन करने का नतीजा बुरा होता है और वे 1944 में हिटलर तानाशाही के प्रतिरोध में शामिल हो गए और उनमें से बहुतों को अपनी जान गंवानी पड़ी।

दुनिया के एक दूसरे तानाशाह स्तालिन के राज में भी इसी कहानी की पुनरावृत्ति हुई। स्तालिन का प्रारंभ से ही रूस के ओर्थोडाक्स चर्च से टकराव हुआ। कम्युनिस्ट होने के नाते चर्च के प्रति अपना विरोध उसको छिपाने की जरूरत भी नहीं थी। 1928 में सत्ता का एकछत्र स्वामी बन जाने के बाद उसने चर्च पर

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

हमला शुरू किया। इन्हीं दिनों उसने खेती का सामूहिकीकरण किया और किसानों के खिलाफ अभियान को चर्च के खिलाफ आक्रमण से जोड़ते हुए उसने अभियान चलाया। ईसाइयत को प्रतिक्रियावादी किसान-वर्ग की विचारधारा बताकर निन्दा की। नास्तिकता को फैलाने के लिए 'लड़ाकू नास्तिक संघ' नामक संगठन बनाया गया जिसे सरकार का पूरा समर्थन प्राप्त था। लेकिन लोगों की आस्थाओं को बंदूक की नोक पर या सुख-सुविधाओं का लालच देकर नहीं बदला जा सकता। जब 1937 में जनगणना हुई तो यह पाया गया कि सरकारी समर्थन के बावजूद 'लड़ाकू नास्तिक संघ' के सदस्यों की संख्या सिर्फ 50 लाख थी जबकि आस्तिकों की संख्या 5 करोड़ के लगभग थी। इस तरह जोर-जबर्दस्ती की नीति असफल साबित हुई।

लेकिन शीघ्र ही स्तालिन को अपने युद्ध प्रयत्नों में जनता का समर्थन जुटाने के लिए चर्च के सहयोग की जरूरत पड़ी। 1943 के संकटकालीन वर्ष में स्तालिन ने रूसी ऑर्थोडाक्स चर्च से एक धर्म-संधि की और युद्ध के लिए लोगों को प्रेरित करने के लिए चर्च का समर्थन जुटाया। युद्ध के बाद स्तालिन ने चर्च से सीधे टकराव की नीति त्याग दी और चर्च को कुछ रियायतें देकर सोवियत प्रचार के लिए उसका इस्तेमाल करने की कोशिश की।

पोलैण्ड में भी कैथोलिक चर्च असहमति और विरोध का एक केन्द्र बना और सोलिडारिटी आंदोलन के पीछे उसकी बड़ी भूमिका थी।

सैनिक कार्रवाई के बाद भारत सरकार सिखों के धार्मिक मामलों में जिस प्रकार दखलंदाजी कर रही है और उनके बीच झगड़ा पैदा करने की कोशिश कर रही है उसे इसी संदर्भ में समझा जा सकता है। जून 1984 की सैनिक कार्रवाई इतनी अनुचित, गैरजरूरी, विध्वंसकारी और भयानक थी कि इसने सारे सिखों के मन को आहत और क्षुब्ध किया है। अब सरकार किसी तरह उस पर लीपा-पोती करना चाहती है। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमिटी सरकार के कहे अनुसार चलने के लिए तैयार नहीं थी। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी और वयोवृद्ध संत बाबा खड़क सिंह द्वारा स्वर्ण मन्दिर में 'कार-सेवा' शुरू करने के लिए रखी गई यह मांग बहुत जायज थी कि पहले सेना स्वर्ण मन्दिर से हटे और स्वर्ण मन्दिर का प्रबंध और नियन्त्रण कमिटी के हाथों में सौंपा जाय। लेकिन सरकार सेना नहीं हटाना चाहती। वह यह भी नहीं चाहती कि पंजाब के लाखों लोग अपनी आंखों से देखें कि उनके पवित्रतम तीर्थस्थान की उनके अपने देश की सेना ने क्या हालत की है। इसलिए सरकार एक ऐसे व्यक्ति—बाबा संतासिंह—को ढूंढ़कर ले आई है जो पहले दरजे का धूर्त, तिरस्कृत और अक्खड़ आदमी है। 17 जुलाई, 1984 को बुड्ढा दल के निहंग मठाधीश बाबा संतासिंह ने सरकारी मदद से स्वर्ण मन्दिर में जो कार-सेवा शुरू की है, उसे आम सिख समुदाय का कोई

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

समर्थन प्राप्त नहीं है । यह कार-सेवा नहीं, कार-सेवा की सिखों को श्रेष्ठ परंपरा का मजाक है। ऐतिहासिक कार-सेवाएं सारे सिख समुदाय की संगत बुलाकर उसकी अनुमति लेकर प्रतिष्ठित संतों द्वारा की जाती है। जो सबके लिए खुली होती है, और जिसमें सब लोग स्वेच्छा से सरोवर की सफाई और निर्माण-कार्य के लिए श्रमदान करते हैं। सेना के पहरे में, जहां घुसने के लिए अनुमति पत्र लेना होता है, और किराये के मजदूरों और इंजीनियरों द्वारा, जो कार-सेवा की जा रही है उसे सिख समुदाय ने 'सरकार-सेवा' कहकर अस्वीकार किया है।

सरकार द्वारा लाए गए बाबा संतासिंह नामक इस व्यक्ति का व्यक्तित्व और इतिहास भी गौर फरमाने लायक है। जब सारा सिख समुदाय स्वर्ण मन्दिर के ध्वंस पर दुःख व क्षोभ प्रकट कर रहा था, तब बाब संतासिंह अपने चेहरे पर कोई शिकन लाए बिना फौजी कार्रवाई को उचित बता रहे थे। अकाल तख्त को हुए नुकसान के बारे में बाबा संतासिंह का दार्शनिक अंदाज में कहना है, "इमारतें बनती और बिगड़ती रहती हैं यही तो जिन्दगी है।"[1] उन्होंने यह भी कहा कि स्वर्ण मन्दिर से सेना को हटाने की मांग गलत है, "सेना हमारी अपनी सेना है। यह मरम्मत के काम में किसी प्रकार का हस्तक्षेप तो नहीं कर रही है। यह दुःख की बात है कि स्वर्ण मन्दिर को उग्रवादियों और आतंकवादियों से मुक्त करने के लिए सेना की प्रशंसा करने के बजाय कुछ लोग उसकी निन्दा कर रहे हैं।"[2]

जो लोग बाबा संतासिंह के इतिहास को जानते हैं, उन्हें बाबा संतासिंह के द्वारा सरकार को प्रदान की गई इस सेवा से कोई आश्चर्य नहीं हुआ। एक रिपोर्ट के मुताबिक, "बुड्ढा दल ने आज जो भूमिका अख्तियार की है वह 25 साल पहले बाबा संतासिंह द्वारा नेतृत्व संभालने के बाद से स्थापित की गई परंपराओं के अनुरूप ही है। बुड्ढा दल इस शताब्दी के दूसरे दशक के मध्य से ही शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमिटी-विरोधी और अकाली-विरोधी रुख अपनाने को बाध्य किया जा रहा था। बाद में ज्ञानी जैलसिंह के मुख्यमंत्रित्व काल में वह अधिकाधिक कांग्रेस समर्थक होता गया। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमिटी के साथ इसके झगड़े में श्री जैलसिंह ने इसको पूरा सरकारी समर्थन दिया। श्री जैलसिंह ने बाबा के हाथ मजबूत करने के लिए कई निहंगों को जेल से रिहा कर दिया। उन्होंने बाबा संतासिंह को एक विदेशी कार भेंट की। श्री जैलसिंह ने उस मार्ग पर, जिससे दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने पंजाब से नानडेड (महाराष्ट्र) तक यात्रा की थी, एक ऐतिहासिक जुलूस निकलवाया था। इस जुलूस में उन्होंने बाबा संतासिंह को प्रमुख स्थान दिया था। इन कृपाओं के बदले में बाबा संतासिंह ने श्री जैलसिंह

1. इंडियन एक्सप्रेस, 18 जुलाई, 1984
2. टाइम्स आफ इंडिया, 18 जुलाई, 1984

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

को 'परम सिख' की उपाधि प्रदान की।"[3]

जिस सरकार ने स्वर्ण मन्दिर में शस्त्रों के जमा होने का इतना प्रचार किया और उसे सैनिक कार्रवाई और दमन का मुख्य बहाना बनाया, उसी सरकार की कृपा से आज बाबा संतासिंह के अनुयायी खुले आम बन्दूकें और स्टेनगनें लेकर स्वर्ण मन्दिर में घूमते हैं। सरकारी पक्षपात और हस्तक्षेप कई मामलों में साफ है। बाबा संतासिंह की कार-सेवा को मान्यता दिलवाने के लिए जो 'सरबत खालसा' आयोजित की गई उसे सफल बनाने में पूरी सरकारी मशीनरी झोंक दी गई। कई प्रान्तों से बसों में भर-भर कर लोगों को लाया गया। दिल्ली में ट्रैफिक पुलिस ने बस और ट्रक-ड्राइवरों के लाइसेंस छीन लिए ताकि वे सरबत खालसा के लिए अपनी बसें सरकार/कांग्रेस की सेवा में पेश करने के लिए मजबूर हों। दूसरी ओर जब सिख धर्म के सर्वोच्च संतों—पंज पियारों—ने 2 सितम्बर को विश्व सिख सम्मेलन बुलाया तो उसे 'शांति-व्यवस्था भंग होने' की आशंका बता कर अनुमति नहीं दी गई और उसमें आने वाले लोगों को रोका और परेशान किया गया।

इन कारगुजारियों के पीछे सरकार के दो इरादे साफ दिखते हैं—एक सिख समुदाय में फूट डालना और दो गुरुद्वारों का प्रबन्ध शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी के हाथ से छीनकर अपने कठपुतली लोगों के हाथ में सौंपना। बाबा संतासिंह और कांग्रेस के नेता सिर्फ शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी के मौजूदा नेतृत्व की ही आलोचना नहीं कर रहे हैं वे उस गुरुद्वारा अधिनियम को ही बदलने की बात कर रहे हैं जिसके तहत इस कमिटी का चुनाव होता है। बाबा संतासिंह कह भी चुके हैं कि एक बार वे अकाल तख्त में आ गये हैं तो वापस नहीं जायेंगे।

यह गुरुद्वारा अधिनियम ब्रिटिश शासन के समय (1925) से चला आ रहा है और यह कोई ब्रिटिश सरकार ने सिखों को उपहार में नहीं दिया था। यह तो ब्रिटिश सरकार के खिलाफ पांच वर्षों के लम्बे और वीरतापूर्ण संघर्ष के बाद उन्होंने प्राप्त किया था, जिसमें हजारों लोग गिरफ्तार हुए और सैकड़ों लोगों ने अपनी जान खोयी। आज जिस तरह बाबा संतासिंह जैसे लोगों का सहारा लेकर इंका सरकार गुरुद्वारों पर अपना नियन्त्रण करने की कोशिश कर रही है, ठीक उसी तरह ब्रिटिश सरकार ने स्वर्ण मन्दिर और अन्य गुरुद्वारों को अपने नियन्त्रण में ले लिया था और उनके प्रबंधक नामजद कर दिये थे। ये प्रबन्धक सरकार की मिजाजपुरसी और खुशामद में लगे रहते थे और स्वाधीनता आंदोलन की निंदा किया करते थे। इनका पतन इतना हो चुका था कि जलियांवाला बाग के कुख्यात खलनायक जनरल

3. द टेलीग्राफ, 20 जुलाई, 1984

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

डायर को बुलाकर स्वर्ण मन्दिर के सरबराह (प्रबंधक) अरुरसिंह ने उनको सरोपा देकर सम्मानित किया।[4] ऐसे मठाधीशों और महंतों के खिलाफ और ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ चले गुरुद्वारा मुक्ति आंदोलन के बाद सिखों ने अपनी जीत के रूप में गुरुद्वारा अधिनियम को हासिल किया था। इसीलिए आज जब शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी के अधिकारों और उसकी सत्ता को हड़पने की कोई भी कोशिश होती है तो सिखों में इतनी तीव्र प्रतिक्रिया होती है। उन्हें लगता है कि ऐसी कोशिश तो इतिहास के चक्रको पीछे ले जाने और एक ऐसी संस्था को, जिसे भारी बलिदान और त्याग की कीमत पर बनाया गया है, नष्ट करने की साजिश है। संतासिंह उन्हें अरुर सिंह की याद दिलाते हैं और आज का सरकारी दमन और हस्तक्षेप सिख मानस में ब्रिटिश सरकार के दमन और हस्तक्षेप की याद ताजा करते हैं।

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी एक लोकतांत्रिक ढंग से चुनी जाने वाली सिखों की संस्था है और यदि मौजूदा नेतृत्व पर भ्रष्टाचार और गुरुद्वारों के दुरुपयोग के आरोप लगाये जा रहे हैं तो कमिटी के चुनावों में इस नेतृत्व को बदला जा सकता है। लेकिन शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी को ही खत्म करने की मांग के पीछे निश्चित रूप से कुछ दूसरे ही इरादे हैं। सच तो यह है कि तमाम कोशिशों के बावजूद इंका समर्थक आज तक शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के चुनावों में जीत नहीं सके हैं। इसलिए अब इंकाई लोग किसी अन्य प्रकार से इस कमेटी पर कब्जा करना चाहते हैं।

इंका सरकार गुरुद्वारे पर नियंत्रण करने को आतुर है तो उसका कारण गुरुद्वारों का दुरुपयोग नहीं है क्योंकि गुरुद्वारों में शस्त्र जमा करने वाले और उसको तथाकथित उग्रवादी गतिविधियों का अड्डा बनाने वाले भिंडरांवाले और उसके अनुयायी इंका के बहुत नजदीक थे।[5]

श्रीमती गांधी की मुख्य चिंता आज यह है कि कहीं गुरुद्वारे सरकार का अहिंसक तरीकों से विरोध करने वाले लोगों के एकजुट होने के केन्द्र न बन जायें। आपात्काल के दौरान, जब देश में तानाशाही का नंगा नाच और भयंकर दमन चल रहा था, तब स्वर्ण मन्दिर से रोज सत्याग्रहियों के जत्थे निकलते थे और धारा 144 तोड़कर गिरफ्तारी देते थे। ऐसी कार्रवाइयों को तानाशाह श्रीमती गांधी सहन नहीं कर सकती हैं और असहमति और विरोध के केन्द्रों को वे स्थायी रूप से नष्ट कर देना चाहती हैं। ऐसी परिस्थितियों में धार्मिक संस्थाओं की

4. इस मौके पर हुए वार्तालाप के दिलचस्प विवरण और गुरुद्वारा मुक्ति आंदोलन (1920-25) के विवरण के लिए इस पुस्तक का अध्याय 1 देखें।
5. इस पुस्तक के अध्याय 2 में भिंडरांवाले और इंका के घनिष्ठ संबंधों का विवरण दिया है।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

सरकारी नियंत्रण से स्वतंत्रता और स्वायत्तता की रक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि जब लोकतंत्र और नागरिक अधिकारों पर चौतरफे हमले हो रहे हैं तो विरोध की आवाज के किसी छोटे से छोटे कोने से भी उठने की संभावनाओं को बचाना होगा।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम राजनीति में धर्म के प्रवेश की वकालत कर रहे हैं। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी और अकाली दल का उदय एक खास ऐतिहासिक संदर्भ में हुआ और उन्होंने एक विदेशी सरकार (यह कोई भी सरकार हो सकती थी) के नियंत्रण से एक धार्मिक संस्था को मुक्त कराने और उनकी स्वायत्तता की रक्षा करने के संघर्ष में एक गौरवशाली भूमिका निभायी। लेकिन इसके बाद हम 60 वर्ष आगे निकल आये हैं और लोगों के लिए धर्म इतना महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया है जितना पहले था। आम तौर पर यह मान लिया गया है कि धर्म आदमी का व्यक्तिगत मामला है और व्यक्तिगत मामलों तक सीमित रहना चाहिए। जब इसे सार्वजनिक मामलों में ले आया जाता है तो यह आदमी-आदमी के बीच दीवार बनाने लगता है और लोगों में कट्टरता पैदा करता है। लेकिन धर्म को व्यक्तिगत दायरों तक सीमित करना कोई आसान काम नहीं है। इसके लिए विभिन्न समुदायों, खासकर बहुसंख्यक समुदाय, के राजनीतिक नेताओं द्वारा अत्यधिक अनुशासन और संयम बरतने की आवश्यकता होती है। बहुसंख्यक समुदाय में असुरक्षा का अहसास सबसे कम होता है इसलिए वह अल्पसंख्यकों से ज्यादा उदारतापूर्वक व्यवहार कर सकता है ताकि उनकी आशंकाएं और उनके भय दूर हों। यह बहुसंख्यक समुदाय के अपने हित में भी है क्योंकि उनकी उदारता का असर अल्पसंख्यक समुदाय पर पड़ता है और वह भी बहुसंख्यकों से अपनी पारस्परिकता बढ़ाने लगता है। इससे समाज की प्रगति ज्यादा संभव हो पाती है। एक ऐसा वातावरण पनपता है जिससे कट्टरता कम होती जाती है और लोगों के स्वतंत्र रूप से घुलने-मिलने और विचारों के आदान-प्रदान की प्रक्रियाएं तेजी से चल पड़ती हैं। ऐसा होने पर धर्म और राजनीति को अलग किया जा सकता है।

इसके विपरीत यदि बल-प्रयोग द्वारा धार्मिक समूहों को वश में लाने की कोशिश की जाए तो उसका परिणाम ठीक उल्टा होगा और वे धार्मिक रूप से ज्यादा कट्टर और हठधर्मी हो जायेंगे। स्वर्ण मन्दिर की सैनिक कार्यवाई का एक सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि इसने सारे सिखों में प्रताड़ित कौम होने का कुछ ऐसा ही अहसास भर दिया है और सारे सिखों को, चाहे वे किसी वर्ग या विचारधारा के हों, को एक बना दिया। बहुत सारे सिख नास्तिक भी हैं लेकिन देश उन्हें इस रूप में स्वीकार नहीं करता। सारे सिखों को एक नजर से देखा जाने लगा। सरकार ने अपने प्रचार द्वारा सारे सिखों को संदेह और नफरत का पात्र

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

बना डाला है और देश का बहुसंख्यक समुदाय इस प्रचार का शिकार हो गया है। ऐसी मानसिकता से कट्टरता और पुनरुत्थानवाद को बढ़ावा मिलना अवश्यंभावी है। और ऐसी स्थिति में सिखों की ओर से भी कोई दुःसाहसी कार्रवाई हो सकती है। तब देश की राजनीति आतंकवाद और तानाशाही के बीच बंट जाएगी। इससे अल्पसंख्यकों के दमन और उन्हें नीचा दिखाने की स्थिति तो पैदा होगी ही, बहुसंख्यकों के अधिकार भी छिनते जाएंगे। फौजी कार्रवाई के पहले और उसके बाद जो दमनकारी कानून बनाए गए हैं उन्होंने हर भारतीय के, चाहे वह किसी भी धर्म का हो, अधिकारों पर कुठाराघात किया है। क्या देश समय रहते इस चेतावनी पर ध्यान देगा ?

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

8

काले कानून

पंजाब में सैनिक कार्रवाई के तुरंत बाद सरकार ने जो अध्यादेश जारी किए, उनसे दमन और तानाशाही शासन की लंबी तैयारी साफ दिखाई देती है। राष्ट्रीय सुरक्षा कानून में एक संशोधन का अध्यादेश 21 जून, 1984 को जारी किया गया और कुछ ही दिनों के भीतर 14 जुलाई, 1984 को 'आतंकग्रस्त क्षेत्र (विशेष अदालतें) अध्यादेश' जारी किया गया। बाद में इन अध्यादेशों को संसद में पास करवा कर कानून का रूप दिया गया। जब कुछ ही दिनों में संसद का सत्र शुरू होने वाला है तब भी राष्ट्रपति से अध्यादेश जारी करवाना यह बताता है कि संसद और लोकतांत्रिक परंपराओं की कोई अहमियत सरकार की नजर में नहीं रह गई है। किसी नए प्रस्तावित कानून पर संसद और देश बहस करे और फिर उसे पास किया जाए, इसके बजाय अब राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर देते हैं और शासक पार्टी के बहुमत वाली संसद का काम सिर्फ उस पर स्वीकृति की मुहर लगाना रह जाता है।

ये दोनों कानून पंजाब के संकट से निपटने के बहाने बनाए गए हैं। लेकिन दोनों ही कानून पंजाब पर ही नहीं, पूरे देश पर लागू होते हैं। इससे लोकतांत्रिक अधिकारों को बड़े पैमाने पर हड़पने के सरकार के इरादे साफ हो जाते हैं। कई दृष्टियों से ये कानून अभी तक के सभी कानूनों से ज्यादा दमनकारी और अत्याचारी हैं। ये कानून सरकार, पुलिस और सुरक्षा सेनाओं को इतने मनमाने अधिकार और इतनी अनियंत्रित छूट देते हैं कि इन्हें 'कानूनरहित कानून' (Lawless Laws) कहा जा सकता है।

भारत में आजादी के बाद से ऐसे कानून बनाये जा रहे हैं जो सामान्य नागरिक के अधिकारों को छीनते हैं। ये कानून हमारे संविधान प्रदत्त बुनियादी अधिकारों का मखौल उड़ाते हैं, न्याय-प्रक्रिया को अवरुद्ध करते हैं और लोकतंत्र का गला घोंटते हैं। इनमें सबसे ज्यादा मनमाना कानून निवारक नजरबंदी का है जिसे अलग-अलग रूपों में आजादी के बाद से लागू किया गया है। निवारक नजर-

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

बंदी में अधिकारी या पुलिस किसी नागरिक को इसलिए नहीं पकड़ते कि उसने कोई अपराध किया है, बल्कि **भविष्य में** उसके द्वारा शांति या कानून-व्यवस्था भंग होने की **आशंका** है। यह 'आशंका' वाली बात इतनी अस्पष्ट और मन-मानी है कि उसका भरपूर दुरुपयोग हुआ है। और अक्सर यह दुरुपयोग सत्ता-पार्टी के राजनैतिक विरोधियों के खिलाफ हुआ है।

जब भी कोई दमनकारी कानून बनाया जाता है तो यह बहाना बनाया जाता है कि समाज-विरोधी तत्त्वों या खतरनाक अपराधियों या तस्करों या 'उग्रवादियों' को पकड़ने के लिए ये जरूरी हैं और इनका उपयोग राजनैतिक उद्देश्यों के लिए नहीं किया जाएगा। इस प्रकार ऐसे कानूनों में वे न्यूनतम कानूनी सुरक्षाएं और गारंटियां भी खत्म करने की कोशिश की जाती है जो एक आजाद देश के कानून के राज में हर नागरिक को मिलनी चाहिए। और हमारे विपक्ष के बेवकूफ नेता हर बार सरकार के इस झांसे में आ जाते हैं और ऐसे कानूनों का समर्थन कर देते हैं। उदाहरण के लिए जब आंतरिक सुरक्षा कानून (मिसा) 1971 में बनाया गया था, जो कि निवारक नजरबंदी का एक नया रूप था, तो कहा गया था कि इसका उपयोग तस्करों के लिए किया जाएगा। सोशलिस्ट पार्टी को छोड़कर पूरे विपक्ष ने संसद में इसका समर्थन किया और जब 'मिसा' के भरपूर उपयोग का समय (आपात्काल) आया तो उन्हीं विपक्ष के नेताओं और कार्य-कर्ताओं को इसमें गिरफ्तार किया गया जिन्होंने इसका समर्थन किया था। 1977 के जन-उभाड़ ने मिसा को खत्म किया तो 1980 में इंदिरा सरकार ने वापस आते ही राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (एन एस ए) बना डाला। फिर एक बार वही तर्क दिया गया कि इसका उपयोग अपराधियों के लिए किया जाएगा लेकिन देश के विभिन्न भागों में बारम्बार राजनैतिक कार्यकर्ताओं और आन्दोलनों के नेताओं के लिए इसका उपयोग किया गया है। अभी जो नए कानून सरकार ने बनाए हैं उन्हें गम्भीरता से न लेकर और सिर्फ मौखिक विरोध की औपचारिकता निभाकर विपक्षी नेता एक बार फिर ऐतिहासिक गलती कर रहे हैं।

इस वर्ष दमनकारी कानूनों की दिशा में एक कदम 5 अप्रैल, 1984 को राष्ट्रीय सुरक्षा कानून में संशोधन करके उठाया गया था। (1) निवारक नजरबंदी कानूनों के तहत गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के लिए बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका दाखिल कर अपनी गिरफ्तारी को चुनौती देना तब तक लगभग नामुमकिन होता है जब तक उसे गिरफ्तारी के कारण नहीं बताये जाते। 5 अप्रैल के संशोधन के पहले तक राष्ट्रीय सुरक्षा कानून के सेक्शन 8 में यह व्यवस्था थी कि गिरफ्तार व्यक्ति को "यथाशीघ्र कारण बताये जाएं, पर साधारणत: 5 दिन से अधिक की देर न हो, यदि विशेष परिस्थितियां हों तो 10 दिन से अधिक की देर न हों और देरी के कारण लिखित रूप से दर्ज किए जाएं।" 5 अप्रैल के अध्यादेश ने सेक्शन 8 को

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

संशोधित करके '10 दिन' की जगह '15 दिन' कर दिया है। इस प्रकार एक व्यक्ति को बिना उसकी गिरफ्तारी का कारण बताए 15 दिनों तक जेल में रखा जा सकता है और वह इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सकता है। (2) संशोधन से पहले सेक्शन 10 और 11 के तहत यह व्यवस्था थी कि गिरफ्तारी के तीन सप्ताह के भीतर गिरफ्तार व्यक्ति का मामला एक सलाहकार बोर्ड को (जो कि यह जांच करेगा कि इस व्यक्ति को इस कानून के तहत गिरफ्तार करना उचित है या नहीं) सौंपना और गिरफ्तारी के सात सप्ताह के भीतर बोर्ड को अपनी रपट पेश करना अनिवार्य है। संशोधन द्वारा यह अवधि क्रमशः चार महीने दो सप्ताह और पांच महीने तीन सप्ताह कर दी गई है। इस प्रकार एक व्यक्ति लगभग छह महीने तक निवारक नजरबन्दी में रखा जा सकता है भले ही अन्ततः सलाहकार बोर्ड उसकी गिरफ्तारी को अनुचित पाये। (3) इसी प्रकार एक और संशोधन के जरिए रा० सु० का० में बन्दी बनाये जाने वाले व्यक्तियों को एक वर्ष तक कैद रखने के बजाय दो वर्ष तक कैद रखा जा सकता है।

राष्ट्रीय सुरक्षा कानून में दूसरी बार संशोधन का अध्यादेश 24 जून 1984 को लाया गया जिसका तात्कालिक उद्देश्य अकाली दल के अध्यक्ष श्री लोंगोवाल और अन्य नेताओं व कार्यकर्ताओं की सर्वोच्च न्यायालय में विचाराधीन बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को नाकामयाब करना और उनकी रिहाई को रोकना था। किसी व्यक्ति की गैरकानूनी नजरबंदी को न्यायालय में खारिज होने से रोकने के लिए न्याय प्रक्रिया को प्रभावित करके कानून ही बदल देने का यह इतिहास में अनोखा उदाहरण है। सामान्य तौर पर कानून के मुताबिक व्यक्तिगत मुकदमों का फैसला होता है, लेकिन यहां व्यक्तिगत मुकदमे की आवश्यकता के अनुसार कानून चला और बदला।

इस अध्यादेश के द्वारा मुख्यतः दो संशोधन किए गए। पहले संशोधन से यह व्यवस्था कर दी गई है कि नजरबन्दी आदेश में दिये गए कारणों में से प्रत्येक को नजरबन्दी का स्वतंत्र कारण माना जाएगा। यदि कोई एक या कई कारण (लेकिन सारे नहीं) न्यायालय द्वारा गलत, अस्पष्ट, असम्बद्ध, अस्तित्वहीन पाए गए तब भी सर्वोच्च न्यायालय नजरबन्दी को रद्द नहीं कर सकेगा, जैसा कि पहले करता था। इस तरह नजरबंद व्यक्ति के लिए अपनी नजरबंदी को चुनौती देना लगभग असम्भव बना दिया है। दूसरा संशोधन और भी खतरनाक है। इसके पहले एक बार नजरबंदी आदेश की अवधि खत्म हो जाने या उसके रद्द किये जाने पर नया नजरबंदी आदेश तभी जारी किया जा सकता था जबकि उसके बाद नये तथ्य सामने आए हों। लेकिन अब यह व्यवस्था कर दी गई है कि ऐसी हालत में पुराने तथ्यों पर ही दुबारा नजरबन्द किया जा सकता है और इस प्रकार 1 वर्ष की अवधि (पंजाब और चण्डीगढ़ के मामले में 2 वर्ष) तक नजरबंद रखा जा सकता

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किसी नजरबंदी आदेश के सारे कारणों को गलत ठहराने और नजरबंदी आदेश को रद्द करने पर भी सरकार उस व्यक्ति को दुबारा गिरफ्तार करके एक वर्ष और पंजाब या चण्डीगढ़ के मामले में दो वर्ष तक गलत आधारों पर नजरबंद रख सकती है। कुल मिलाकर यह संशोधन सरकार के गैरकानूनी कामों को कानूनी बनाने और न्यायपालिका के अधिकार सीमित करने की एक कोशिश है।

14 जुलाई, 1984 को इस शताब्दी का सबसे कठोर और दमनकारी कानून बनाया गया। 'आतंकग्रस्त क्षेत्र (विशेष अदालतें) अध्यादेश' का घोषित उद्देश्य आतंकवादियों से निबटना है लेकिन यह कानून स्वयं आतंक फैलाने और आतंकवादी गतिविधियों को जन्म देने के लिए काफी है। आतंकवादियों से निबटने के लिए और किसी इलाके को अशान्त क्षेत्र घोषित करने के लिए पहले से ही बहुत-से कानून हैं। एक विशेष अदालतों का कानून भी पहले से है। ऐसी स्थिति में यह नया कानून बनाने की कोई जरूरत नहीं थी। ऐसा नहीं है कि ये पहले वाले कानून मनमाने, अनुचित और दमनकारी नहीं हैं लेकिन यह नया कानून तो इन सबसे आगे बढ़कर ज्यादा दमनकारी है।

इस कानून के अंतर्गत केन्द्र सरकार किसी भी इलाके को 'आतंकग्रस्त' घोषित कर सकती है और वहां इस कानून को लागू कर सकती है। इसके लिए उसे राज्य सरकार से परामर्श करना जरूरी नहीं है। जबकि देश में अनेक राज्य ज्यादा स्वायत्तता के लिए लड़ रहे हैं, यह कानून केन्द्र सरकार को हस्तक्षेप का एक और मौका देकर स्थिति को गम्भीर बनाता है।

कानून में 'आतंकवादी' की परिभाषा बहुत व्यापक है और इसके अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जा सकता है। अध्यादेश के मुताबिक, "आतंकवादी वह व्यक्ति है जो लोगों की बेबाक हत्याएं, या हिंसा, या अनिवार्य सेवाओं और संचार साधनों में बाधा डालने का काम, या सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाने का काम, इस उद्देश्य से करता है कि—(1) जनता या जनता के एक हिस्से को भयभीत कर सके, (2) विभिन्न धर्म, नस्ल, भाषा के या क्षेत्रीय समूहों या जातियों या समुदायों के बीच सौहार्द्रता को नष्ट कर सके, (3) कानून द्वारा स्थापित सरकार को मजबूर कर सके या उसे आतंकित कर सके, या (4) भारत की एकता और प्रभुसत्ता को खतरे में डाल सके।" इस प्रकार रेल या डाक-तार विभाग के कर्मचारी यदि अपनी मांगों के लिए हड़ताल करते हैं तो वे भी अनिवार्य सेवाओं में बाधा डालने के कारण 'आतंकवादी' की परिभाषा में आ जाएंगे। यही नहीं, जिस इलाके में हड़ताल होती है, उस इलाके को भी 'आतंकग्रस्त' इलाका घोषित किया जा सकता है और प्रशासन वहां पर अत्यधिक सत्ता अपने हाथ में ले सकेगा। मजदूर, किसान, आदिवासी, हरिजन, छात्र या कोई और जो भी अपने

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

अधिकारों के लिए या सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक अत्याचारों के खिलाफ लड़ते हैं, 'आतंकवादी' घोषित किए जा सकते हैं। विशेषकर जैसे 'सरकार को मजबूर करने' या 'अनिवार्य सेवाओं में बाधा डालने' वाली बातें तो किसी भी शान्तिपूर्ण आंदोलन के खिलाफ लागू की जा सकती हैं। इसी प्रकार इन दिनों 'देश की एकता और प्रभुसत्ता' तो इन्दिरा सरकार की गद्दी बचाने की पर्यायवाची हो गई है और सरकार विरोधी हर आन्दोलन 'देश की एकता और प्रभुसत्ता के प्रति खतरा' घोषित कर दिया जाता है।

अध्यादेश ने अपराधों की एक लम्बी सूची दी है जो इस कानून के तहत स्थापित विशेष अदालतों के अन्तर्गत आएंगे। यह लम्बी सूची भी इस कानून के जाल को बहुत फैलाती है जिसमें किसी भी व्यक्ति को फंसाया जा सकता है।

इस कानून के तहत गिरफ्तार व्यक्तियों पर मुकदमा विशेष अदालतों में चलाया जाएगा। ये विशेष अदालतें जरूरी नहीं कि घोषित 'आतंकग्रस्त क्षेत्र' में ही हों। वे कहीं भी किसी भी राज्य में गठित की जा सकती हैं। उदाहरण के लिए मणिपुर के 'आतंकवादी' का मुकदमा राजस्थान में विशेष अदालत बनाकर चलाया जा सकता है। इन अदालतों के न्यायाधीश केन्द्रीय सरकार द्वारा उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से नियुक्त किए जाएंगे। विशेष अदालत की कार्रवाई गुप्त रखी जा सकती है और कार्रवाई कहीं भी हो सकती है, जेल में भी।

क्रिमिनल प्रोसीजर कांड में समरी ट्रायल (मुकदमे का, बिना सारी औपचारिकताएं पूरी किए, जल्दी निपटारा) की व्यवस्था है, लेकिन यह सिर्फ उन अपराधों के लिए है जिनकी अधिकतम सजा दो साल हो और समरी ट्रायल में वास्तव में सजा तीन महीने से ज्यादा नहीं दी जा सकती है। लेकिन आतंकवादियों वाले इस नये कानून में विशेष अदालत तीन साल अधिकतम सजा वाले अपराधों का समरी ट्रायल कर सकती है और दो साल तक सजा दे सकती है।

कानून के अन्तर्गत कुछ सुरक्षाएं हमेशा होती हैं ताकि निर्दोष लोगों को अनावश्यक रूप से तंग और परेशान न किया जाय। लेकिन आतंकग्रस्त क्षेत्र (विशेष अदालतें) कानून इन सुरक्षाओं को या तो कमजोर और अप्रभावी कर देता है या खत्म कर देता है। इस तरह की एक सुरक्षा जमानत सम्बन्धी है। दण्ड प्रक्रिया संहिता के सेक्शन 167 में यह व्यवस्था है कि किसी भी गिरफ्तार व्यक्ति को 24 घंटों के अन्दर न्यायिक मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाना चाहिए। मजिस्ट्रेट उसे जमानत पर रिहा कर सकता है या न्यायिक या पुलिस हिरासत में रख सकता है। पुलिस हिरासत में उसे तभी रखा जाता है जब पुलिस की जांच-पड़ताल के लिए यह अत्यंत जरूरी हो। सेक्शन 167 में हिरासत की अवधि 15 दिनों तक सीमित की गई है। केवल अपवाद स्थिति में ही मजिस्ट्रेट संगीन

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

अपराधों में 60 दिन और अत्यधिक संगीन अपराधों में 90 दिन की हिरासत की अनुमति दे सकता है। आतंकग्रस्त क्षेत्र (विशेष अदालतें) कानून हिरासत की अधिकतम सीमा को सामान्य मामलों में 15 दिन से बढ़ाकर 30 दिन और संगीन और अत्यधिक संगीन मामलों में 1 वर्ष कर देता है। इस प्रकार गिरफ्तार व्यक्ति को अदालत में अपराध का मुकदमा दायर किए बिना पूरे एक वर्ष तक जेल में बंद रखा जा सकता है। दूसरी यह व्यवस्था की गई है कि गिरफ्तार व्यक्ति को न्यायिक मजिस्ट्रेट के सामने पेश करना अनिवार्य नहीं है, उसे प्रशासनिक मजिस्ट्रेट के सामने भी पेश किया जा सकता है। प्रशासनिक मजिस्ट्रेट सीधे सरकार की सेवा में होते हैं इसलिए उनसे मनचाहा आदेश करवा लेना पुलिस के लिए आसान होता है। नए कानून में अग्रिम जमानत की व्यवस्था को भी हटा दिया है।

सर्वोच्च न्यायालय ने यह सामान्य नियम बनाया है कि एक विचाराधीन कैदी को, यदि उसके फरार होने या सबूत जुटाने में बाधा डालने की आशंका न हो तो, सामान्य रूप से जमानत पर रिहा किया जाना चाहिए। इसके पीछे न्याय का यह सार्वभौमिक सिद्धान्त है कि जब तक एक व्यक्ति अपराधी प्रमाणित नहीं हो जाता, तब तक उसे निर्दोष माना जाना चाहिए। लेकिन नया कानून इस न्याय के सिद्धान्त को पूरा उलटकर रख देता है। इस कानून के अंतर्गत गिरफ्तार किसी व्यक्ति को तब तक जमानत पर रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि अदालत इस बारे में आश्वस्त न हो कि यह मानने के पर्याप्त कारण हैं कि गिरफ्तार व्यक्ति दोषी नहीं है और जमानत के दौरान उसके द्वारा कोई अपराध करने की आशंका न हो। लेकिन यदि अदालत इस बात के प्रति आश्वस्त हो जाएगी कि गिरफ्तार व्यक्ति दोषी नहीं है तो मुकदमे की ही क्या जरूरत रह जाएगी ? इस प्रकार की 'आश्वस्ति' मुकदमे के शुरू में बहुत मुश्किल है और इसलिए जमानत भी मुश्किल हो गई है। कुल मिलाकर, यह कानून जेल को नियम बना देता है, जमानत को अपवाद।

आतंकग्रस्त क्षेत्र (विशेष अदालतें) कानून में गवाहों के नाम, पते और पहचान गुप्त रखने की व्यवस्था है। मुकदमे की गुप्त कार्यवाही के साथ मिलकर यह व्यवस्था पूरे मुकदमे और न्याय की प्रक्रिया को मजाक बना देगी। पुलिस द्वारा झूठे गवाह तैयार किए जाते हैं, इसे कौन नहीं जानता ? यदि इन गवाहों के बारे में जानने का भी मौका नहीं मिले तो गिरफ्तार व्यक्ति के लिए इन गवाहों के झूठ को साबित करना बहुत मुश्किल हो जाएगा। बल्कि इस व्यवस्था के अंतर्गत तो यह भी बहुत संभव है कि वास्तव में कोई गवाही न हो, सिर्फ कागजों में गवाही हुई मान ली जाय और गिरफ्तार व्यक्ति को सजा दे दी जाय। यह भी संभव है (क्योंकि गुप्त कार्यवाही है) कि बिना अदालत बैठे ही जज कह दे कि अदालत बैठी तथा गवाही सुनने के बाद पाया कि अभियुक्त दोषी है तथा उसे

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

सजा दे दी जाए। क्योंकि सारी कार्यवाही गुप्त रखी जा रही है, इसका कभी पता नहीं चलेगा।

अंत में, इस कानून का जो सबसे भयावह प्रावधान है वह भारतीय सबूत कानून के सेक्शन 111 में जोड़ा गया अनुच्छेद है। किसी भी कानून में अंतर्गत घोषित 'अशांत क्षेत्र' (डिस्टर्ब्ड एरिया) पर लागू होता है लेकिन ऐसा घोषित होना भी जरूरी नहीं। यह ऐसे इलाके पर भी लागू होगा जहां 'एक महीने से ज्यादा समय से सार्वजनिक शान्ति में व्यापक खलल पड़ रही हो।' ऐसे इलाके में यदि कोई व्यक्ति उस जगह पाया गया जहां पर पुलिस या सेना के खिलाफ आग्नेयास्त्रों या विस्फोटकों का उपयोग हो रहा हो तो उसे भी अपराधी माना जाएगा, जब तक कि उसकी निर्दोषिता साबित न हो जाए। यह जरूरी नहीं कि उसने हिंसा में भाग लिया हो। यह भी जरूरी नहीं कि उसके पास बन्दूक या कोई हथियार मिले हों। सिर्फ उस स्थान पर उस व्यक्ति की मौजूदगी उसके अपराधी होने का पर्याप्त प्रमाण मानी जाएगी।

इस प्रकार यह कानून सरकार, पुलिस और सेना को व्यापक अधिकार देता है जिसका भरपूर उपयोग वे राजनैतिक कार्यकर्ताओं और निर्दोष लोगों को सताने और अत्याचार करने, और न्याय-प्रक्रिया को अवरुद्ध करने में कर सकते हैं। दूसरी ओर पुलिस और प्रशासन की ज्यादतियों से जो सुरक्षाएं नागरिकों को मिलनी चाहिए वे इसमें खत्म कर दी गई हैं या बहुत मुश्किल बना दी गई हैं। विशेष अदालतों के निर्णयों के खिलाफ अपील सिर्फ सर्वोच्च न्यायालय में 30 दिन के भीतर की जा सकती है जबकि आम तौर पर 90 दिन की अवधि अपील के लिए दी जाती है। आम नागरिक के साधन देखते हुए यह अपील लगभग अव्यावहारिक ही रहेगी।

'पीपुल्स युनियन आफ डेमोक्रेटिक राइट्स' के एक लेख में किस प्रकार इस कानून का दुरुपयोग किया जा सकता है, उसका एक उदाहरण दिया है, "इस अध्यादेश के तहत मणिपुर में पीने के पानी जैसी न्यूनतम आवश्यकता के लिए लड़ रहे लोगों को आसानी से 'आतंकवादी' बताया जा सकता है और उन्हें लाकर पंजाब में एक विशेष अदालत में मुकदमा चलाया जा सकता है। 'अभियुक्त' के पास नागरिक अधिकार के वकीलों, अखबारों और अन्य प्रकार के जन-समर्थन के पास पहुंचने का कोई तरीका नहीं रहेगा। ऐसे व्यक्ति का, जिस पर अपनी निर्दोषिता साबित करने का भार है, समरी ट्रायल (पूरी कानूनी कार्यवाही के बिना संक्षिप्त मुकदमा) चलाया जाएगा जिसमें शायद पुलिस अफसर गवाह बनकर आएं। जहां तक 'अभियुक्त' का सवाल है, मणिपुर के एक व्यक्ति के लिए पंजाब में गवाह पेश करना असंभव है विशेषकर जबकि कोई बाहरी मदद संभव नहीं है। ऐसी हालतों में दिल्ली में सर्वोच्च न्यायालय में अपील भी बहुत मुश्किल

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

होगी। और सूची में जिस प्रकार के गंभीर अपराध शामिल हैं, उनके चलते बहुत से मामलों में बिल्कुल निर्दोष व्यक्ति इस प्रकार फांसी के तख्ते तक पहुंचा दिए जा सकते हैं। दूसरी संभावना यह है कि विशेष अदालत वास्तव में कार्यवाही चलाए बिना ही कागजों पर कार्यवाही दिखा दे। अखबारों में निकलेगा "मणिपुर में कथित आतंकवादी पकड़े गए, पंजाब में उन पर मुकदमा चलाया जा रहा है।" एक महीने के बाद यह घोषणा की जाएगी कि शीघ्र न्याय किया जा चुका है और राज्य के खिलाफ युद्ध छेड़ने के अपराधी पाए गए आतंकवादी को सजा दी जा चुकी है। और सब कुछ पूर्णतया स्वाभाविक और कानूनी प्रतीत होगा। कोई विरोध नहीं होगा क्योंकि आखिरकार वह एक 'आतंकवादी' था जिसे किसी प्रकार की सहानुभूति या समर्थन नहीं दिया जाना चाहिए। लेकिन वह आतंकवादी हम में से कोई भी हो सकता है, वह आप भी हो सकते हैं।"[1]

आतंकग्रस्त क्षेत्र (विशेष अदालतें) कानून कई मामलों में हमें 1919 के रोलेट कानून की याद दिलाता है। विशेष अदालतें, गुप्त मुकदमें, अपराधों की सूची, अशांत क्षेत्र की घोषणा, गवाहों के नाम-पते को गुप्त रखना, आदि अनेक चीजें, लगता है उसी काले कानून से ली गयी हैं जिसे पूरा भारत इस शताब्दी के शुरू में ही अस्वीकार कर चुका था और जिसके खिलाफ आंदोलन में अनेकों भारतीयों ने अपना बलिदान दिया था। और आखिरकार ब्रिटिश सरकार को वह काला कानून वापिस लेना पड़ा। "वकील नहीं, अपील नहीं, दलील नहीं," के नाम से प्रसिद्ध उस रोलेट कानून में फिर भी कुछ सुरक्षाएं थीं जो 1984 के इस कानून में नहीं हैं।

ऐसे ही एक काले कानून—पब्लिक सेफ्टी बिल—और जलियांवाले बाग हत्याकाण्ड का विरोध शहीद भगतसिंह ने संसद में बम फेंककर किया था और अपनी कुरबानी दी थी। उन कुरबानियों से जो आजादी हासिल हुई, वही आजादी आज अपनी ही सरकार द्वारा काले कानून बनाकर छीनी जा रही है। क्या हम 1984 के इन काले कानूनों के खिलाफ और इस पर आधारित राज्यसत्ता के खिलाफ विद्रोह करेंगे या अपने पूर्वजों की कुरबानियां बेकार होने देंगे?

1. "क्या आप आतंकवादी हैं?", समता एरा, सितम्बर, 1984

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

9

समाचार पत्रों और विरोधी दलों की भूमिका

एक लोकतांत्रिक समाज में पंजाब जैसे संकट के वक्त अखबारों और अन्य प्रचार माध्यमों (मीडिया) तथा विपक्षी दलों से यह आशा की जाती थी कि वे सत्ता के स्वेच्छाचार के खिलाफ रक्षा-कवच का काम करेंगे, सत्ताधारियों के खतरनाक इरादों के बारे में जनता को आगाह करेंगे और उसके सामने झूठ का पर्दाफाश करेंगे तथा सच्चाई को रखेंगे। लेकिन पंजाब के संकट के समय अखबार तथा विपक्षी दल दोनों ही अपने दायित्व का निर्वाह करने में एकदम असफल रहे। श्रीमती इंदिरा गांधी की इस बात के लिए तारीफ करनी होगी कि वे अखबारों को अपनी चालाकी से प्रभावित करने और विपक्षी दलों को भ्रम में डालने में कामयाब रहीं, जिससे वे देश के हितों का खयाल करने के बजाय उनके (श्रीमती गांधी के) इरादों को पूरा करने में मददगार बन गये।

झूठे प्रचार का शिकंजा

अपने ही देश के एक हिस्से और एक समुदाय पर फौजी हमला करने और उससे चुनाव में पूरा लाभ उठाने के लिए इंका की सरकार के लिए यह आवश्यक था कि वह जन-संचार व सम्पर्क के विभिन्न साधनों पर पूर्ण नियंत्रण रखे और उनका सहयोग प्राप्त करे। दूरदर्शन और आकाशवाणी तो सरकार के नियंत्रण में हैं ही और वे इंदिरा-दर्शन और इंदिरा-वाणी के रूप में परिणत हो चुके हैं। पंजाब के संकट के समय उनका तो पूरा इस्तेमाल किया ही गया क्योंकि सरकार उन्हें अपना प्रचार का साधन ही मानती है, लेकिन प्रेस पर भी अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण रखा गया। फौजी कार्रवाई के एक महीने पहले सूचना व प्रसारण मंत्री हरिकिशन लाल भगत ने दिल्ली के अखबारों के सभी संपादकों को बुलाया था। इसमें उन्होंने संपादकों से यह आश्वासन मांगा कि अगर सरकार पंजाब में कोई कड़ी कार्रवाई करे तो वे उसका समर्थन करेंगे। और पंजाब में जब फौजी कार्रवाई हो गयी तो अखबारों ने सरकार का उसकी आशा से भी ज्यादा समर्थन

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

किया। देश के प्रायः सभी बड़े अखबारों ने फौजी कार्रवाई का स्वागत किया। बहुतों ने तो अपने मुख पृष्ठ पर प्रधानमंत्री को बधाई देते हुए और भारतीय सेना को 'उसकी कामयाबी' पर सलामी दागते हुए संपादकीय छापे। पहली बार समाचार पत्रों के संगठनों, जैसे अ० भा० समाचार पत्र संपादक सम्मेलन, प्रेस क्लब आफ इंडिया आदि ने, जो आम तौर पर प्रेस संबंधी समस्याओं पर ही वक्तव्य देते हैं, फौजी कार्रवाई का समर्थन करते हुए वक्तव्य दिये। इनमें से किसी ने भी फौजी कार्रवाई के औचित्य और जरूरत के बारे में प्रश्न उठाने और इसके खतरों के बारे में सोचने की चेष्टा तक नहीं की।

पंजाब के मामले में प्रेस द्वारा सरकार के साथ पूरा सहयोग करने के कई कारण हैं। शायद बड़े उद्योगपति घराने, जो अखबारों के मालिक भी हैं, सरकार की आलोचना कर अपने व्यावसायिक हितों को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहते। शायद संपादक लोग सरकारी अनुग्रह प्राप्त करने और ऊंचे-ऊंचे पदों पर पहुंचने के भी आकांक्षी हैं या फिर देश के ज्यादातर पत्रकार शहरी उच्च मध्यम वर्ग से आते हैं और इसीलिए नीचे की जनता से सम्पर्क न रहने के कारण वे आसानी से सरकारी प्रचार के शिकार हो जाते हैं। बहरहाल इन सबके चलते हमारे देश में 'स्वतंत्र प्रेस' एकदम आज्ञाकारी प्रेस बन गया है। फौजी कार्रवाई के वक्त अखबारों में सच्चाई और तथ्यों के प्रकाशन की जो रही-सही गुंजाइश थी वह भी कड़ी सेंसरशिप और पंजाब में संवाददाताओं के आवागमन पर प्रतिबंध लगा दिये जाने के कारण समाप्त हो गयी थी। जालंधर के अखबारों को तो लगभग 10 दिनों तक प्रकाशित ही नहीं होने दिया गया था। प्रेस सरकार से कितना ज्यादा सहयोग करने को आतुर था, इसका पता इस बात से लगता है कि पत्रकारों और संवाददाताओं ने घटनाओं की जांच और खोजबीन करने तथा उनकी रपट देने के अपने पेशे के अधिकारों पर लगाये गये सरकारी प्रतिबंधों का प्रतिवाद तक नहीं किया। बाद में सेंसरशिप की कुछ आलोचना जरूर हुई पर वह इतनी हल्की थी कि ऐसा लगता था कि पत्रकार अपने अधिकार मांगने के बजाय सरकार से भीख मांग रहे हैं। यह मान लिया गया कि प्रेस पर जो प्रतिबंध लगाये गये हैं वे नेक इरादे से ही लगाये गये हैं। यह भी पूछा नहीं गया कि सरकार क्या छिपाना चाहती है।

पंजाब के संकट के वक्त इस बात का भी पहली बार जबरदस्त एहसास हुआ कि हमारे पत्रकारों की धर्मनिरपेक्षता अत्यंत छिछली है। पंजाब समस्या के बारे में पत्रकार जगत के महारथी और मठाधीश धर्मनिरपेक्षता के नाम पर जो बकबक कर रहे थे, उसे हिन्दू सांप्रदायिकता के विष वमन के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता। ये लोग हर सिख को एक खालिस्तानी और हर मुसलमान को एक पाकिस्तानी के रूप में देख रहे थे और हमारे देश की एक ऐसी छवि

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

उपस्थित कर रहे थे जिसमें सिर्फ हिन्दू ही राष्ट्र के संरक्षक हो सकते हैं और बाकी के लोग या तो संदिग्ध हैं या पक्के देशद्रोही। दरअसल बात यह है कि हिन्दू प्रेस का दम्भ अपने सारे साम्प्रदायिक रुझान को राष्ट्रीय हित के रूप में पेश करता है। उसकी यह प्रवृत्ति हमारे राष्ट्र के आधार को ही कमजोर करती है।

अकाली आंदोलन को शुरू से ही बदनाम करने के लिए अखबारों, रेडियो और टेलीविजन आदि का इस्तेमाल किया गया। उसकी मांगों और उसके चरित्र की गलत तस्वीर पेश की गयी। उसे साम्प्रदायिक, पृथकतावादी, आतंकवादी, कट्टरतावादी और अनुदार बताया गया। अखबार और पत्र-पत्रिकाएं अकाली दल की मुख्य धारा और सत्तारूढ़ दल द्वारा 'प्रवाहित' भिंडरांवाले की उग्रवादी धारा के बीच फर्क करने में असमर्थ रहे या उन्होंने जानबूझकर फर्क करने से इनकार किया। अखबारों व पत्र-पत्रिकाओं में अकाली दल की राय, उसके दृष्टि-कोण और उसकी मांगों को स्थान नहीं दिया गया। आनन्दपुर साहब प्रस्तावों में जो मांगें की गयी थीं, उन पर किसी तरह का बहस-मुबाहिसा नहीं किया गया और भिंडरांवाले व जगजीत सिंह चौहान जैसे स्वयं भू-नेताओं को, जिन्हें शुरू में कोई पूछता तक नहीं था, खूब उछाला गया। उनके बारे में कालम पर कालम रंगे गये। बैंक डकैती या अपराध की हर घटना का दोष सिख आतंकवादियों के मत्थे मढ़ दिया गया। पगड़ी पहने हुए युवक किसी बैंक या रेल को लूटते थे तो उन्हें सिख आतंकवादी करार दिया जाता था, लेकिन यदि गैर सिख युवक कोई बैंक लूटते थे तो यह नहीं बताया जाता था कि वे किस धर्म के थे। डकैतों का कोई धर्म नहीं होता सो उनका धम न बताना ही उचित था लेकिन सिख डकैतों के बारे में यह बात भुला दी गयी, सांप्रदायिक वैमनस्य जो पैदा करना था। अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन आदि ने अकाली आंदोलन और सारे सिख समुदाय को बदनाम कर उनके खिलाफ देश में उन्माद फैलाकर सबसे अधिक अनिष्ट किया है। पंजाब में सेना भेजने और अकाली आंदोलन, जो कि इस देश के सबसे बड़े कांग्रेस विरोधी आंदोलनों में से एक था, को कुचलने के लिए पहले से यह सब करना आवश्यक था। यह जाहिर है कि सत्तारूढ़ पार्टी का पंजाब में आतंकवाद और साम्प्रदायिकता को बढ़ा कर, हिन्दुओं और सिखों में एक कृत्रिम संघर्ष पैदा कर अकाली आंदोलन को दबाने और बाकी देश में हिन्दू वोट बटोरने का इरादा था। जाने या अनजाने अखबार और अन्य प्रचार माध्यम सत्तारूढ़ दल की इस साजिश का अंग बने।

जब अकालियों ने संविधान की 25वीं धारा के खण्ड-2 (बी) को जलाने का निर्णय किया तो अखबारों व पत्र-पत्रिकाओं ने उनके इस कार्य को इस तरह पेश किया कि मानो वे सारे संविधान को जलाने जा रहे हैं (अखबारों की सुरखियों में यही कहा गया) और इस प्रकार वे संविधान का घोर अपमान करने वाले हैं। 25वीं

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

धारा को संशोधित करने की मांग के औचित्य या अनौचित्य पर विचार करना तो दूर, अकालियों के निर्णय को ही राष्ट्रद्रोह घोषित कर दिया गया। इस बात पर ध्यान तक नहीं दिया गया कि अकालियों का संविधान की एक विशेष धारा में संशोधन की मांग करना इस बात का भी सूचक था कि बाकी के सारे संविधान में उनकी आस्था है। अकालियों की संविधान संशोधन की इस मांग पर खूब हो-हल्ला मचाया गया, लेकिन लोगों के बुनियादी अधिकारों का उल्लंघन करके सरकार संविधान का रोज जो मज़ाक उड़ा रही है उसके बारे में हमें कभी नहीं बताया जाता। इसी तरह तथाकथित सिख आतंकवादी कार्रवाइयों को तो खूब बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया गया (हमारे अखबारों में आजकल खोज-बीन वाली रपटों (इन्वेस्टिगेटिव रिपोर्टिंग) का बहुत चलन है लेकिन आतंकवादी कार्रवाइयों की खोजबीन करने और यह पता लगाने कि उनके पीछे कौन है, कोई चेष्टा ही नहीं की गयी) लेकिन पंजाब में पुलिस, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल और सीमा सुरक्षा बल द्वारा एक दूसरे किस्म की जो आतंकवादी कार्रवाइयां हो रही थीं, उनके बारे में मौन रखा गया। आतंकवाद को कुचलने के नाम पर इन अर्द्धसैनिक संगठनों ने बहुत से लोगों को परेशान किया, गिरफ्तार किया, मार डाला और यातनाएं दीं। कई मनगढ़ंत मुठभेड़ों में लोगों को मार डाला गया। सरकारी आतंकवाद तो सबसे ज्यादा खतरनाक आतंकवाद है, उसको नज़रअंदाज करना कहीं ज्यादा घातक होता है।

पंजाब में जब सेना भेजी गयी तो बहुत सारी झूठी और मनगढ़ंत कहानियां फैलायी गयीं। प्रेस इन्हें फैलाने में सरकार का मददगार बना। सरकार के प्रवक्ताओं ने जो कुछ कहा उसे प्रेस ने मान लिया। इस बात की चेष्टा भी नहीं की कि वह खुद जांचे और सत्यता के प्रमाण प्राप्त करे। अधिकांश कहानियां तो ऐसी थीं कि उनका झूठ सहज बुद्धि से ही पकड़ा जा सकता था। लेकिन वह कहां रह गयी थी? अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो और टेलीविजन आदि द्वारा फैलाये गये झूठ और कुप्रचार के कुछ उदाहरण यहां दिये जा रहे हैं।

(1) यह कहा गया कि लोंगोवाल और तोहरा ने सेना को 'आत्मसमर्पण' किया। 'आत्म समर्पण' शब्द ही इस मामले में आपत्तिजनक है क्योंकि लोंगोवाल और तोहरा फरार नहीं थे। उन्हें सशस्त्र सेनाओं ने गिरफ्तार किया था। उनके द्वारा आत्मसमर्पण की बात कहां उठती थी? यही, नहीं लोंगोवाल और तोहरा ने जेल में अपने रिश्तेदारों को मुलाकात के दौरान आत्मसमर्पण करने की बात का खण्डन भी किया है। यह झूठ सिखों की नज़र में अकाली नेताओं को नीचा दिखाने के उद्देश्य से ही फैलाया गया था।

(2) लोग यह जानना चाहते थे कि भिंडरांवाले कैसे मारे गये। सो एक 'सहयोगी' संवाददाता की मदद से सरकार ने इस संबंध में 'जानकारी' दी। एक

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

सरकारी प्रवक्ता ने इस सहयोगी संवाददाता को बताया कि बब्बर खालसा ने फौजी कार्रवाई के दौरान भिंडरांवाले की हत्या कर दी। यह झूठ अखबारों में खुफिया सूत्रों का हवाला देते हुए बड़ी-बड़ी सुरखियों में छापा गया। बब्बर खालसा द्वारा भिंडरांवाले को मारने की बात सच नहीं हो सकती क्योंकि सैनिक अधिकारियों ने संवाददाताओं को फौजी कार्रवाई का जो विवरण दिया था उसमें कहा गया था कि सेना ने स्वर्ण मंदिर में प्रवेश करते ही उसके अहाते के पूर्वी हिस्से पर कब्जा करके उसे अन्य हिस्सों से काट दिया था, इसलिए जाहिर है कि कोई भी पूर्वी हिस्से से अकाल तख्त वाले पश्चिमी हिस्से में नहीं जा सकता था। सेना के मुताबिक पश्चिमी हिस्से में अकाल तख्त से भिंडरांवाले और उनके लोग सेना का 'कड़ा प्रतिरोध' कर रहे थे।

(3) 11 जून को टेलीविजन पर दो ऐसे दृश्य दिखाये गये, जिनकी सत्यता एकदम संदिग्ध है। (क) एक दृश्य में एक स्त्री और एक पुरुष अकाल तख्त के पीछे बने हुए एक कुएं से 'बरामद' किये गये चोरी के गहनों में अपने गहने ढूंढ़ रहे थे। अमृतसर में जब करफ्यू लगा हुआ था और लोग अपने घर के छज्जों व देहरी पर आने तक से डर रहे थे तब दो स्त्री और पुरुष स्वर्ण मंदिर में अपने गहने ढूंढ़ने कैसे पहुंच गये ? (ख) कुएं में कुछ बकसे भी 'बरामद' किये गये जिनमें नोट पाये गये। टेलीविजन पर बरामद नोटों को दिखाया गया। वे एकदम नये मालूम पड़ते थे। यह एक नामुमकिन-सी बात है कि कुएं में काफी दिनों से ऐसे बक्सों में, जो वाटरप्रूफ न हों, रखे गये नोट एकदम नये मालूम पड़ें। यही नहीं स्वर्ण मंदिर के अहाते में 'बरामद' गहने और नोट इस बात का कोई सबूत नहीं देते कि वे चुराये गये या बैंकों से लूटे गये थे। स्वर्ण मंदिर में बहुत सारे गहने और रुपये चढ़ावे के तौर पर आते थे। बहुत लोग भिंडरांवाले को भेंट भी दिया करते थे।

(4) 14 जून को बताया गया कि स्वर्ण मंदिर अहाते की तलाशी में बड़ी मात्रा में चरस, गांजा, भांग और विदेशी मुद्रा बरामद की गयी है। प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया द्वारा प्रसारित एक लम्बे समाचार में यह भी बताया गया था कि आतंकवादी तस्करी के काम भी कर रहे थे और दूसरे स्थानों में मादक पदार्थों को भेजने के लिए स्वर्ण मंदिर का गोदाम के रूप में इस्तेमाल कर रहे थे। एक सप्ताह बाद स्वर्ण मंदिर के अहाते में मादक पदार्थों की बरामदगी की खबर का खण्डन करते हुए अखबारों में एक छोटा-सा समाचार छपा। इस समाचार में कहा गया था कि एक करोड़ रुपये की कीमत के मादक पदार्थ भारत-पाक सीमा पर बरामद किये गये थे, स्वर्ण मंदिर के अहाते में नहीं। अहाते के पास की एक इमारत से थोड़ी-सी अफीम जरूर बरामद हुई थी। पहली खबर तो मुख पृष्ठ पर बड़ी-बड़ी सुरखियों में छपी लेकिन खबर का खण्डन भीतर के पृष्ठों पर सहसा नजर न आ सकने वाले स्थान पर ही छपा। जो भी हो झूठ फैलाने की शरारत

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

तो कामयाब हो ही गयी।

(5) स्वर्ण मंदिर के अहाते में कुछ महिलाओं को आतंकवादियों द्वारा जबरन रखने की खबर कुछ अखबारों में छापी गयी। फौजी कार्रवाई के दौरान पंजाब के पुलिस आई०जी० श्री पी० एस० भिंडर से जब इस खबर की सत्यता के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा, "मुझे ऐसी कोई महिला नहीं मिली है जिसने स्वर्ण मंदिर में जबरन रखे जाने की शिकायत की हो। क्या सेना ने यह नहीं कहा था कि भांग, चरस आदि स्वर्ण मंदिर से बरामद हुई है और अब इस खबर का खण्डन किया जा रहा है (प्रोब इंडिया, जुलाई 1984)।" इतना ज्यादा झूठ बोला गया है कि पंजाब के पुलिस आई० जी० तक को यह लगता है कि मनगढ़ंत कहानियां फैलायी गयी थीं।

(6) 11 जून को टेलीविजन पर दिये गये एक समाचार में स्वर्ण मंदिर में बरामद किये गये अस्त्र-शस्त्रों की विस्तृत सूची दी गयी। इस सूची में एक राकेट लांचर और दो मीडियम मशीनगनें भी थीं, लेकिन श्वेत पत्र में जो सूची दी गयी है उसमें राकेट लांचर और मीडियम मशीनगनें नहीं हैं। यह सूची हल्की (लाइट) मशीनगनों से ही शुरू होती है। यह भी खबर दी गयी थी कि शुहबेग सिंह के पास से एक वाकी-टाकी बरामद की गयी थी। लेकिन यह खबर भी विश्वसनीय नहीं लगती, क्योंकि एक वाकी-टाकी का शुहबेग सिंह क्या करते जब तक कि उस वाकी-टाकी से दिये जाने वाले आदेशों को ग्रहण करने के लिए अन्य आतंकवादियों के पास और वाकी-टाकी न हो। श्वेत पत्र भी वाकी-टाकी के बारे में मौन है। जाहिर है कि ये सारे समाचार मनगढ़ंत थे। हम यह नहीं जान सकते कि स्वर्ण मंदिर से बरामद किये गये कितने अस्त्र-शस्त्र वहां सचमुच में पाये गये थे और कितने सैनिक कार्रवाई को उचित ठहराने के लिए सेना द्वारा वहां रखे गये थे। यही नहीं, फौजी कार्रवाई के एक महीने बाद भी स्वर्ण मंदिर से अस्त्र-शस्त्रों की बरामदगी के समाचार आ रहे थे जबकि किसी भी हालत में स्वर्ण मंदिर के परिसर की पूरी तलाशी में चार-पांच दिन से ज्यादा नहीं लगना चाहिए।

(7) शुहबेग सिंह के बारे में यह सूचना दी गयी कि उन्हें भ्रष्टाचार के आरोपों पर सेना से बरखास्त कर दिया गया था। लेकिन ईमानदारी का तकाजा तो यह था कि इसके साथ यह भी बताया जाता कि 13 फरवरी 1984 को विशेष अदालत ने सी० बी० आई० द्वारा उनके खिलाफ दायर दोनों मुकदमे में उन्हें बरी कर दिया था। अखबारों और रेडियो व टेलीविजन द्वारा भिंडरांवाले, शुहबेग सिंह और आतंकवादियों के खिलाफ यह प्रचार किया गया कि वे भ्रष्ट, डकैत, तस्कर और बलात्कारी थे। उनकी चरित्र-हत्या के लिए रचे जाने वाले इस अनुचित प्रचार का उद्देश्य फौजी कार्रवाई का औचित्य साबित करना ही था।

(8) 9 जून को मेजर जनरल ब्रार ने टेलीविजन पर एक भेंट में कहा कि

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

फौजी कार्रवाई में दो नकली निहंग भी मारे गये और मेडिकल जांच करने पर पता लगा कि ये दोनों पाकिस्तानी थे। मेडिकल जांच से कैसे किसी की राष्ट्रीयता का पता लग सकता है ? क्या किसी व्यक्ति को सिर्फ इसीलिए पाकिस्तानी माना जा सकता है कि उसका खतना हुआ है ?

(9) फौजी कार्रवाई के दौरान सारे समय यह कहा जाता रहा "हमारे जवान प्रार्थना करते हुए अत्यन्त श्रद्धा के साथ स्वर्ण मन्दिर में गये" और "हमारे जवानों ने अत्यधिक संयम बरता और अपने से कभी गोली नहीं चलायी (यानी आक्रमण किए जाने पर ही चलायी)," यह कोरी बकवास थी। सेना की ज्यादती और क्रूरता के विवरण अब धीरे-धीरे सामने आ रहे हैं।

(10) लोगों को अब सरकारी रेडियो और टेलीविजन पर कोई विश्वास नहीं रह गया है। पहले यह कहा गया कि अकाल तख्त को कोई नुकसान नहीं हुआ है। इसके बाद कहा गया कि थोड़ा नुकसान हुआ है। सच्चाई तो यह है कि अकाल तख्त इतना ज्यादा नष्ट हो गया है कि बाबा सन्ता सिंह, जिन्होंने सरकार के आदेश पर कार-सेवा का जिम्मा लिया है, यह सुझाव देने को बाध्य हुए कि उसे पूरी तरह गिरा कर एकदम नए सिरे से निर्मित किया जाए। इसी तरह यह भी कहा गया, हरमन्दिर साहब को कोई नुकसान नहीं पहुंचा है। भारतीय जवानों ने खतरा झेलकर भी उस पर गोली नहीं चलायी और इस कोशिश में बहुत से जवान मारे भी गये। सच्चाई क्या है ? सार्वजनिक निर्माण विभाग के मुख्य इंजीनियर के मुताबिक हरमन्दिर साहब पर गोलियों के 259 निशान हैं। इस पर सरकार ने अपने झूठ पर यह लीपापोती की है कि ये निशान आतंकवादियों द्वारा चलायी गयी गोलियों के हैं, भारतीय सेना के जवानों की गोलियों के नहीं। लेकिन इसके पहले सरकार कई बार यह भी कह चुकी है कि आतंकवादी हरमन्दिर साहब में भी छिपे हुए थे और वहां से गोली चला रहे थे। इसका मतलब तो यह निकलता है कि आतंकवादी, आतंकवादियों पर गोली चला रहे थे। क्या ऐसा होना संभव है ? यह भी दावा किया गया कि तोशाखाना (पुस्तकालय और संग्रहालय) को कोई नुकसान नहीं पहुंचा है। लेकिन बाद में इस बात का पता चला है कि 6-7 जून की रात को आग में तोशाखाना की बहुत-सी ऐतिहासिक वस्तुएं और दस्तावेज नष्ट हो गए थे।

(11) फौजी कार्रवाई के बाद सेना के सिख जवानों द्वारा विद्रोह करने और सेना छोड़ जाने की घटनाओं के बारे में अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं और रेडियो व टेलीविजन ने जो रुख अपनाया वह एकदम लापरवाही और गैर जिम्मेवारी भरा था। फौजी कार्रवाई से उत्पन्न भयंकर नतीजों को समझने की कोशिश करने के बजाय वे इसके पीछे आतंकवादी या पाकिस्तानी एजेंटों के होने या सुनियोजित बगावत के षड्यन्त्र होने की बात साबित करने की बेहूदा कोशिशें ही करते रहे।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

हिन्दुस्तान टाइम्स, 20 जून 1984 को स्वयं इन्दिरा गांधी ने बी-बी-सी को बी० बी० सी० दिए एक इन्टरव्यू में कहा कि ये सिख जवान पाकिस्तानी टी० वी० देखकर भड़के थे। लेकिन बिहार, बंगाल और महाराष्ट्र की फौजी छावनियों में पाकिस्तानी टी० वी० के कार्यक्रम कैसे पहुंच गए ?

(12) अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं और रेडियो व टेलीविजन से फौजी कार्रवाई का विरोध करने वालों के खिलाफ जोरदार अभियान छेड़ा गया। ऐसे लोगों का मजाक उड़ाया गया और उन्हें राष्ट्रद्रोही कहा गया। 23 जून के हिन्दुस्तान टाइम्स में फौजी कार्रवाई के विरोध में एक भारतीय राजनयिक का नारवे में शरण मांगने पर मजाक उड़ाया गया। एक कार्टून में यह दर्शाया गया कि उसे पागल-खाने में शरण मांगनी चाहिए थी। फौजी कार्रवाई के बाद कुछ दिनों तक तो ऐसा महसूस होता था कि हमारे 'राष्ट्रीय प्रेस' में सरकार से असहमति की कोई गुंजाइश ही नहीं है और वह पूरी तरह इंका की सरकार का भोंपू बन गया है।

सरकार के झूठे प्रचार के कारण लोगों ने सच्चाई को जानने के लिए बी० बी० सी० से खबरें सुनना और पाकिस्तानी टेलीविजन देखना शुरू किया। अगर हमारा रेडियो और टेलीविजन खुद झूठा प्रचार करे और अफवाहें फैलाए तो बी० बी० सी० की आलोचना करना या उसके खिलाफ प्रदर्शन करना और लोगों से अफवाहों पर ध्यान न देने की अपील करना एकदम बेमानी है। अखबारों, रेडियो और टेलीविजन के झूठे प्रचार से सिख समुदाय ने अपने को बहुत ही अपमानित महसूस किया। सिखों को इस बात से भी बहुत दुःख पहुंचा कि उनके पवित्र स्थानों को तस्करों, डकैतों और बलात्कारियों के अड्डे बताया जा रहा है। सिखों का यह कहना सही है कि रेडियो और टेलीविजन से उनके घावों पर लगातार नमक छिड़का जा रहा था।

फौजी कार्रवाई को इस तरह पेश किया गया मानो भारत ने किसी विदेशी शत्रु पर महान् विजय प्राप्त कर ली हो। इससे सिख समुदाय ने अपने को अपमानित तो महसूस किया ही, साथ ही उसे यह भी लगा कि वह एकदम अकेला और अपने ही देश में विदेशी माना जाने लगा है। फौजी कार्रवाई को गौरवान्वित करने और उसका औचित्य साबित करने के लिए हिन्दुओं की साम्प्रदायिक भावनाओं को भी बढ़ावा दिया गया।

अन्त में यह कहना आवश्यक है कि देश की जनता को तथ्यों की जानकारी से वंचित किया जा रहा है, जिससे वह संकीर्णता और साम्प्रदायिक मनोभाव से ऊपर उठकर पंजाब की समस्या पर सही व तार्किक राय नहीं बना पा रही है। इससे देश की भयानक क्षति हो रही है। ऐसा लगता है कि सारे राष्ट्र को धोखा दिया जा रहा है। यह जानना भी बड़ा दुखद है कि पंजाब के संकट के समय जिसे हम 'राष्ट्रीय' प्रेस कहते हैं, उसने अपने को साम्प्रदायिक और सरकारी चारण

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

साबित किया है।

विपक्ष का निकम्मापन

पंजाब की फौजी कार्रवाई ने अगर किसीको सबसे ज्यादा भौंचक्का कर दिया तो वह देश का विपक्ष था। जनता से कोई वास्ता और सम्पर्क न होने के कारण सभी पार्टियों ने, चाहे वे दक्षिणपंथी कहलाती हों या वामपंथी, फौजी कार्रवाई का समर्थन किया। चन्द्रशेखर, एन० टी० रामाराव और सुब्रह्मण्यम स्वामी को छोड़कर सभी विरोधी नेता उस भजन मण्डली में शामिल हो गए जो फौजी कार्रवाई का गुणगान कर रही थी और आतंकवादियों की 'योजनाओं' पर दहशत व आश्चर्य प्रकट कर रही थी। वे इन्दिरा गांधी का चुनावी गणित नहीं समझ सकीं और न ही वे सरकार द्वारा हिन्दू साम्प्रदायिकता को उकसावा देने के तरीकों का अर्थ भांप पायीं। इससे देश के भविष्य को क्या खतरा है, इसकी कोई प्रतीति भी उन्हें नहीं थी। आम आदमी के सरकार के प्रचार और प्रोपगंडा के बहकावे में आने की हमेशा संभावना रहती है लेकिन देश के विरोधी दलों के मंजे हुए और बुजुर्ग नेताओं से तो यह आशा नहीं ही की जाती थी कि वे श्रीमती इन्दिरा गांधी की चाल को समझने में असमर्थ रहेंगे। उनकी यह असमर्थता उनके निकम्मेपन और उनके असली चरित्र को उजागर करती है। विरोधी नेताओं द्वारा फौजी कार्रवाई की आलोचना न करने का शायद एक कारण यह भी था कि उन्हें इस बात का डर था कि ऐसा करने पर सरकारी प्रचार के बहकावे में आए हिन्दू नाराज हो जाएंगे और चुनाव में उन्हें हिन्दुओं के वोट नहीं मिलेंगे। लेकिन उन्होंने इतनी-सी मोटी बात पर ध्यान नहीं दिया कि सरकारी प्रचार के बहकावे में आए हुए हिन्दुओं के वोट उनकी झोली में नहीं, सरकार की झोली में ही गिरेंगे। कुछ विरोधी दलों ने अपनी यह गलती बाद में महसूस की और वे कांग्रेस की नीतियों की आलोचना करने लगे। फिर भी उनका स्वर लीपापोती और अपनी सफाई देने का ही रहा। उनकी आलोचना मन्द और नरम होती थी जबकि इंका के वक्तव्य आक्रामक होते थे और उनमें फौजी कार्रवाई की आलोचना करने वालों को 'राष्ट्रद्रोही' और 'देश-विरोधी' ठहराया जाता था। होना तो यह चाहिए था कि विरोधी दलों के नेता सरकार की राष्ट्रद्रोही और देश-विरोधी कहकर आलोचना करते। विरोधी दलों के नेताओं का रवैया क्या था, इसका एक अच्छा उदाहरण जनता पार्टी के अध्यक्ष चन्द्रशेखर द्वारा 26 जून को दिया गया वक्तव्य है। इस वक्तव्य में चन्द्रशेखर ने सरकार की आलोचना करते हुए यह स्पष्टीकरण भी दिया कि इसका मतलब यह कतई नहीं होता कि वे सेना की किसी भी प्रकार की आलोचना कर रहे हैं। सेना क्यों आलोचना से परे है? क्या पंजाब में सेना की क्रूरता की निन्दा नहीं की जानी चाहिए? इसी दिन भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष ने यह

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

बात बहुत सही कही थी कि इंका द्वारा भाजपा की आलोचना को देश-विरोधी बताना फासीवादी मनोवृत्ति का परिचायक है। लेकिन इसी वक्तव्य में उन्होंने यह भी कहा कि "जम्मू व कश्मीर में खालिस्तानियों और पाकिस्तानियों के बीच जो गठबन्धन प्रकट हुआ है, उससे सख्ती से निपटना चाहिए।" ऐसे में भाजपा के अध्यक्ष 'दुर्गा' द्वारा पंजाब और कश्मीर में की जाने वाली कड़ी कार्रवाई का प्रतिवाद कैसे कर सकते हैं ?

सच्चाई तो यह है कि भारतीय जनता पार्टी और लोकदल ने शुरू से ही इंका से भी आगे बढ़कर अकालियों की निन्दा करने और हिन्दुओं में साम्प्रदायिक उन्माद जगाने की कोशिश की थी। वे काफी दिनों से सरकार की आलोचना कर रहे थे कि वह पंजाब में कड़े कदम नहीं उठा रही है। लेकिन जब कड़े कदम उठाए गए तो वे आश्चर्यचकित रह गए। चरणसिंह ने, जिनके संस्कार आर्य समाजी हैं, तो 1982 में यह कहा था कि अकाली दल पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाना जाहिए। 29 अक्तूबर, 1982 को लिखे गए एक खुले पत्र में चरणसिंह ने कहा था, "15 अगस्त 1947 के दिन हमें पहला काम यह करना चाहिए था कि उन संगठनों के राजनीति में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगा देते जिनकी सदस्यता एक खास जाति, धर्म और भाषा के आधार पर ही होती है। ऐसा कानून बना देने पर मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, अकाली दल या आंध्र में अभी उभरे तेलुगु-देशम जैसे दल उसके दायरे में आ जाते।

पंजाब के मामले में जनता पार्टी की कोई निश्चित राय नहीं थी। उसके नेता अलग-अलग राग अलाप रहे थे। पार्टी के अध्यक्ष चन्द्रशेखर, महासचिव जार्ज फर्नांडीज और सुब्रह्मण्यम स्वामी फौजी कार्रवाई की आलोचना कर रहे थे तो मोरार जी देसाई, मधु दण्डवते, रवीन्द्र वर्मा, रामकृष्ण हेगड़े और राजनारायण जैसे प्रमुख नेता उसका समर्थन। बाद में पार्टी की ओर से जो वक्तव्य दिया गया उसमें इस मतभेद पर लीपापोती करने की ही कोशिश की गयी।

कम्युनिस्ट पार्टियों को कमोबेश रूस की नीतियों के अनुसार ही अपनी राय बनानी पड़ती है। रूस ने फौजी कार्रवाई का समर्थन किया और यह घोषणा भी की कि पंजाब में अमरीका की प्रेरणा से भारतीय राज्य के खिलाफ षड्यन्त्र रचा जा रहा है। ऐसे में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को पंजाब में सी० आई० ए० और पाकिस्तान का हाथ नजर आना स्वाभाविक था। जहां तक मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की बात है, पश्चिम बंगाल के माकपा मुख्य मन्त्री ज्योति बसु ने फौजी कार्रवाई का समर्थन किया लेकिन माकपा के पोलिट ब्यूरो के सदस्य हरकिशन सिंह सुरजीत ने, जिनकी आनन्दपुर साहब का प्रस्ताव बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका बतायी जाती है, ज्यादा संतुलित रुख अपनाया और फौजी कार्रवाई की आलोचन की।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

इस तरह हमने देखा कि अधिकांश विरोधी पार्टियां सरकार की आलोचना करते हुए फौजी कार्रवाई का समर्थन कर रही थीं। यह अपने आप में दुविधापूर्ण और अन्तर्विरोध-भरी स्थिति थी। अगर भिंडरांवाले को इंका ने ही जन्म दिया था और उसने (इंका ने) पंजाब की स्थिति को लगातार बिगड़ने दिया था तो अपनी ही संतान को नष्ट करने के नाम पर एक पूरे राज्य पर फौजी हमला करने की सरकार की कार्रवाई का कैसे समर्थन किया जा सकता है? इस सवाल का जवाब कोई विरोधी दल नहीं दे रहा है। अगर भिंडरांवाले को बढ़ाने और पंजाब की स्थिति को लगातार बिगाड़ते रहने के आरोप सच थे तो विरोधी दलों का पहला कार्य यह होना चाहिए था कि वे सरकार से इस्तीफे की मांग करते। लेकिन किसी भी विरोधी दल में श्रीमती इन्दिरा गांधी से इस्तीफा देने की मांग करने का साहस न था। शायद वे यह बात सोच सकने में भी असमर्थ थे।

विरोधी दलों को पंजाब में सरकार की भूमिका के खिलाफ कम से कम एक राष्ट्र-व्यापी बन्द का आन्दोलन तो करना ही चाहिए था। लेकिन बन्द तो दूर वे पंजाब के मामले पर राजधानी में एक आम सभा तक आयोजित करने में असमर्थ रहे। पंजाब में फौजी कार्रवाई के खिलाफ राजधानी में पहली आम सभा 29 जून को ही हो पाई और यह भी विरोधी दलों द्वारा नहीं विभिन्न छोटे-छोटे राजनीतिक संगठनों और कुछ व्यक्तियों की एक कमेटी के तत्त्वावधान में हुई। यह कहना अनावश्यक है कि पंजाब के संकट ने देश के विरोधी दलों के दिवालियेपन को एक बार फिर उजागर कर दिया है। वे विरोधी दलों की उस न्यूनतम भूमिका का भी निर्वाह नहीं कर पाये जिसकी उनसे आशा की जाती थी। सत्तारूढ़ दल की गलत कार्रवाइयों का विरोध करना तो विरोधी दलों का न्यूनतम काम होता है।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

10
आगे की चुनौतियां

अगर केवल बातें ही मरहम का काम करतीं तो अब तक 'हीलिंग टच' का राग अलापने से सिखों के मन का घाव भर गया होता। लेकिन सैनिक कार्रवाई और 'आपरेशन ब्लू स्टार' के 100 से ज्यादा दिनों बाद भी सेना की मौजूदगी की नंगी सच्चाई को केवल बातों से नहीं छुपाया जा सकता। सिख धर्म स्थलों में लगे गोलियों तथा बम्बों ने देश और देशवासियों से सिखों के रिश्तों को भी क्षतिग्रस्त कर दिया है। सिखों को लगता है कि सरकार ने उनका अपमान किया है और देशवासियों को उनकी फिक्र नहीं है। उनको लगता है कि जब सरकार ने पूरी सिख कौम के साथ गलत सलूक किया और अपनी शक्तिशाली सेना से उनका नर-संहार कराया तो उनके बचाव में एक भी महत्त्वपूर्ण आवाज नहीं उठी। उल्टे इस छोटे-से सम्प्रदाय ने देश की आजादी के लिए जितनी कुर्बानी दी उसे भुलाकर उन्हें घृणा का पात्र बना दिया है। पुलिस और सेना ही नहीं पूरे बहुसंख्यक समुदाय द्वारा उन्हें संदेह की नजर से देखा जाता है। हाल फिलहाल तक खालिस्तान मुट्ठीभर सिखों की एक हवाई कल्पना थी लेकिन अब सिखों को लगता है कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने अपने व्यवहार के द्वारा उन्हें अलग कर दिया है। जब हर कदम पर संदेह किया जाये, तलाशी ली जाये, अपमानित किया जाये और जरा भी संदेह होने पर गोली से उड़ा दिया जाए तो ऐसे में कोई अपने को कैसे राष्ट्र का हिस्सा मानेगा! एकाध अपवाद को छोड़ दिया जाए तो सभी मानते हैं कि 'मुठभेड़ों' के नाम पर सेना या पुलिस अधिकांश समय योजनाबद्ध तरीके से हत्यायें करती हैं। यह देश के लिए शर्म की बात है कि ऐसी हत्यायें आज भी पंजाब में हो रही हैं तथा इनके खिलाफ कुछ भी नहीं किया जाता। लेकिन यह तो और भी शर्मनाक बात है कि इन मुठभेड़ों में पंजाब में अब केवल सिखों को ही चुन-चुन कर मारा जाता है। अभी भी पंजाब से ऐसी 'मुठभेड़ों' की खबरें रोज आ रही हैं।

इन सबको देखते हुए कहा जा सकता है कि शब्दों से घाव नहीं भरेंगे, इसके

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

लिए कुछ ठोस करने की जरूरत है। और यह तभी होगा जब देश एक मदांध सरकार द्वारा की गयी गलतियों को सुधारे। अब भी राष्ट्र को यह मानना चाहिए कि उससे बहुत बड़ा अपराध हुआ है। उसे चाहिए कि जिन लोगों ने पंजाब समस्या को ठीक से नहीं सुलझाकर पंजाब के नागरिकों के खिलाफ सेना द्वारा नर-संहार कराया है, उन्हें दण्ड दे।

आज सिख अपने को पूरी तरह अलग-थलग महसूस करते हैं। उनकी इस भावना को खत्म किया जा सकता है, लेकिन इसके लिए उन्हें यह अहसास कराना जरूरी है कि अंततः पूरा देश उनके क्षोभ और नाराजगी को बांटने के लिए तैयार है। ऐसा हो सकता है। सरकारी प्रचार तंत्र और तथाकथित राष्ट्रीय तथा धर्म-निरपेक्ष अखबारों ने लगातार जिस तरह से सिखों के खिलाफ हिन्दू उन्माद पैदा किया तथा लोगों को झूठ के पुलिए बताए गए, अगर उन्हें वास्तविकता बताई जाए तथा पंजाब में सरकारी साजिश का भंडाफोड़ किया जाए, तो वे भी सिखों की तरह ही आतंकित और क्षुब्ध महसूस करेंगे। देश और समाज का भला सोचने वालों को लोगों के सामने असलियत रखने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिए।

अगर सरकार की पंजाब नीति और सैनिक कार्रवाई की देशव्यापी निंदा हो तो सिखों का गुस्सा थोड़ा कम होगा। इस घाव को स्थायी रूप से भरने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि जिस प्रकार 1977 में 'आपातकाल' की ज्यादतियों के लिए इंदिरा गांधी की सरकार को उखाड़ फेंका था उसी प्रकार पंजाब में हुई ज्यादतियों तथा सरकार द्वारा सिखों के नर-संहार के लिए एक बार फिर इस खूनी सरकार को उखाड़ फेंका जाए। इंदिरा कांग्रेस के दुष्प्रचार को सहयोग देकर जो लोग अपने राजनैतिक स्वार्थ के लिए हिन्दू साम्प्रदायिकता भड़का रहे हैं उनको भी दण्डित करने की जरूरत है। राजनैतिक समस्याओं का सैनिक हल ढूंढ़ने वाले चरणसिंह तथा मुरारजी देसाई जैसे पुरातत्त्व विभाग में रखे जाने वाले नेताओं की छटनी भी आने वाले चुनावों में कर देनी चाहिए। ऐसे राजनेता लोकतंत्र में अप्रासंगिक हो गए हैं और उन्हें अलविदा कह देने में ही देश की भलाई है। संक्षेप में कहें तो पंजाब की घटना के बाद लगता है कि देश को बिखरने से बचाने के लिए एक बिल्कुल नई तरह की राजनीति की जरूरत है। इस नई राजनीति को इस असलियत को समझना होगा कि भारत न तो पूर्णतया एकरूप सांचे में ढला हुआ है और न ही इसे ढाला जा सकता है। भारत अनेक जनजातियों, क्षेत्रीयताओं और धार्मिक समूहों से बना है और सभी की अलग-अलग पहचान है। सभी वर्गों की भावनाओं की कद्र करने पर ही देश एक रह सकेगा। अगर उन्हें अलग किया गया तो राष्ट्र की जगह एक विशाल शून्य उभरेगा और बच जाएगा केवल एक खोखला सवर्ण हिन्दू ढांचा।

अगर सिखों के अपमान को स्थायी होने दिया गया तो जो खतरे सामने

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

आयेंगे उनके प्रति भी हम पूरे राष्ट्र को आगाह करना चाहते हैं। ऐसी हालत में पंजाब में एक अलगाववादी जनआन्दोलन फैलेगा, लेकिन इससे जरूरी नहीं कि इससे खालिस्तान बन ही जाए। इस शताब्दी का इतिहास इस बात का गवाह है कि अलगाववादी आन्दोलनों के होते हुए भी असल में अलगाव अकसर नहीं होता। केवल बांगलादेश ही एक ऐसा उदाहरण है (जिसे भारत ने अपनी सेना भेजकर अलग किया) जो कि एक अपवाद है। लेकिन अगर लोगों के सहयोग से खालिस्तान आन्दोलन चला तो पूर्वोत्तर की तरह पश्चिमोत्तर में भी स्थायी गृहयुद्ध जैसी हालत हो जाएगी। जम्मू-कश्मीर में फारुक अब्दुला की सरकार जिस प्रकार अर्धसैनिक दस्तों तथा वहां के कुख्यात गवर्नर जगमोहन की मदद से गिरायी, लगता है उससे स्थिति और बिगड़ेगी। इससे कश्मीर में अलगाववादी तत्त्वों को नई ताकत मिलेगी। अगर पंजाब में सरकारी दमन तथा हत्याकाण्ड के विरोध स्वरूप अलगाववाद बढ़ा तो निश्चित रूप से यह कश्मीर के अलगाववाद से हाथ मिलाएगा। ऐसी हालत में पंजाब से लद्दाख तक की पाक सीमा से लगे क्षेत्रों में विद्रोह होते रहेंगे। इससे देश की अर्थव्यवस्था और सुरक्षा-व्यवस्था पर क्या असर पड़ेंगे, यह सोचा जा सकता है।

लेकिन ऐसी स्थिति पैदा होने पर दूसरे खतरे भी हैं। तब पूरे पश्चिमोत्तर क्षेत्र में विद्रोहों को दबाने के लिए सेना मौजूद रहेगी। ऐसी स्थिति में नागरिक प्रशासन को कोई नहीं पूछेगा। ऐसी स्थिति होने पर क्या नतीजे निकलेंगे इसकी चर्चा पहले ही इस किताब में की जा चुकी है। तय है कि इससे अन्त में सैनिक शासन आयेगा। पंजाब की फौजी कार्रवाई पर जशन मनाने वाले कट्टर हिन्दू साम्प्रदायिक लोग या वर्तमान शासक गिरोह भी इस स्थिति को पसन्द करेंगे यह कोई नहीं मान सकता। लेकिन हाल के महीनों में उन्हीं लोगों ने देश की राजनीति को इसी दिशा में मोड़ दिया है। सत्ता के मोह में अन्धे हुए शासकों को शायद यह सभी कुछ नहीं दिखता होगा, लेकिन लोकतंत्र में आस्था रखने वाले सभी भारतीयों को यह सब देखना-बूझना चाहिए और किसी भी ऐसी विपदा को रोकने के लिए अपनी पूरी ताकत से प्रयास करना चाहिए।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

सहायक संदर्भ-सूची

पुस्तकें

केनेथ फाइडेल (सं०), **मिलिटरिज्म इन डेवलपिंग कन्ट्रीज़**, ट्रांजेक्शन बुक्स, एन० जे० 1975।

खुशवन्तसिंह, हिस्ट्री ऑफ सिख्स, भाग 1 एवं 2, लंदन।

खुशवन्तसिंह, एम० वी० कामथ एवं अन्य, **द पंजाब स्टोरी**, रोली बुक्स इंटरनेशनल, नयी दिल्ली, 1984।

गंडासिंह, ए ब्रीफ अकाउन्ट ऑफ द सिख पीपुल, द सिख कल्चरल सेंटर, कलकत्ता, 1959।

गेविन केनेडी, **द मिलिटरी इन द थर्ड वर्ल्ड**, डकवर्थ, लंदन, 1974।

पीपुल्स यूनियन फार सिविल लिबर्टिज, **द ब्लेक लाज**, नई दिल्ली, अगस्त, 1984।

मोहम्मद असगर खान, **जनरल्स इन पोलिटिक्स : पाकिस्तान 1958-1982**, विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1983।

मोहिंदर सिंह, **द अकाली मूवमेंट**, मेकमिलन, नई दिल्ली, 1978।

वर्ल्ड सिख पीस ओर्गेनाइजेशन, **पंजाब टेंगल : द डिफ्रेन्ट पर्सपेक्टिव्ज़**, नई दिल्ली, 1984।

रिपोर्ट, दस्तावेज आदि

एसोसिएशन फोर डेमोक्रेटिक राइट्स, **रिपोर्ट आन पंजाब**, 1984 (838, कृष्णनगर, लुधियाना)।

भारत सरकार, **पंजाब आंदोलन पर श्वेत पत्र**, नई दिल्ली, 10 जुलाई 1984।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

लेख

अशोक सेकमरिया, 'पीड़ा जो पंजाब है', **रविवार**, 29 जुलाई-4 अगस्त 1984।

आनंदस्वरूप वर्मा, 'पंजाब : राजनीतिक मसले का सैनिक समाधान', **साप्ताहिक सहारा**, लखनऊ (**संचेतना**, मार्च 1984 में पुनर्मुद्रित)।

इकबाल मलिक, 'अवर न्यूज़', 'देयर न्यूज़', **इंडियन एक्सप्रेस**, 25 जून 1984।

इन्द्रकुमार गुजराल, 'पंजाब : सिलसिला चुनाव की राजनीति का', **संचेतना**, मार्च 1984।

कुलदीप नैयर, 'क्या अकेले अकाली ही दोषी हैं ?' **दैनिक जागरण**, वाराणसी, 15 जून 1984।

खुशवन्तसिंह, 'टीयर्स इन ए पूल ऑफ नेक्टार', **इंडियन एक्सप्रेस**, 17 जून 1984।

गोविन्द तलवलकर, 'स्वर्ण मन्दिर (दूर) दर्शन', **धर्मयुग**, 1 जुलाई 1984।

गोविन्द मुखोटी, 'आर यू ए टेररिस्ट ?', **समता एरा**, सितम्बर 1984।

जगजीतसिंह अरोरा (अवकाश प्राप्त ले० जन०), 'अकालीज वेयर डिपिक्टेड विलैन्स', (साक्षात्कार) **आनलुकर**, 23 जून-7 जुलाई 1984।

जगतार सिंह, 'एन एनाटामी ऑफ वायलेंस', **इंडियन एक्सप्रेस**, 22 जुलाई 1984।

जगमीत उप्पल, 'आज का पंजाब', **रविवार**, 29 जुलाई-4 अगस्त 1984।

जसवन्तसिंह, 'द टेम्पल रिविजिटेड', **इंडियन एक्सप्रेस**, 3 जुलाई 1984।

तारकुण्डे (वी० एम०), 'द ब्लेक लाज', **समता एरा**, सितम्बर 1984।

दर्शनसिंह मैनी, 'गन्स ओवर द गोल्डन टेम्पल; ट्रेजेडी एण्ड ट्रामा', **सन्डे आब्जर्वर**, 15-21 जुलाई 1984।

निर्मल मुखर्जी, 'बिफोर एण्ड आफ्टर इन पंजाब', **इंडियन एक्सप्रेस**, 13-14 जुलाई 1984।

नूरानी, (ए० जी०), 'ए व्हाईट पेपर आन ए ब्लेक रिकार्ड', **द इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इंडिया**, 22 जुलाई 1984।

प्राण चोपड़ा, 'व्हेयर हेज आल द सोंग एण्ड डान्स गोन ?' **द इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इंडिया**, 11-17 दिसम्बर 1983।

प्राण चोपड़ा, 'हिंडसाइट आन पंजाब', **इण्डियन एक्सप्रेस**, 3 जुलाई 1984।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

प्रीतमसिंह, ' ए आई आर एण्ड दूरदर्शन कजवरे आफ पंजाब आफ्टर आर्मी एक्शन', **इकानामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली,** 8 सितम्बर 1984।

बलराज पुरी, 'अंडरस्टेण्डिग पंजाब', **इकानामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली,** 21 जुलाई 1984।

महीपसिंह, 'आखिर हम किस बिन्दु तक आ पहुंचे हैं ?', **धर्मयुग** 15 अप्रेल, 1984। इस लेख के द्वारा धर्मयुग में शुरू हुई बहस भी देखें। वीरेन्द्र, 'पंजाब की भाषा समस्या', 20 मई 1984, शशिभूषण वाजपेयी, 'आखिर हम किस बिन्दु तक पहुंचे', 10 जून 1984, सत्यदेव दुबे, 'जरूरत संशय का जाला काटने की है', 10 जून 1984। महीपसिंह, 'भाषा की गुत्थी क्यों और कैसे उलझी ?' 17 जून 1984।

महीपसिंह, 'करिश्मे की राजनीति फिर कामयाब हुई', **दिनमान,** 24 जून-30 जून 1984 (**संचेतना,** मार्च 1984 में दुबारा छपा है)।

महीपसिंह, 'सिख इतने आहत और विक्षुब्ध क्यों हैं ?' **नवभारत टाइम्स,** 27 जून 1984।

महीपसिंह, 'दर्द और उदासी का सफर', **दिनमान,** 29 जुलाई-4 अगस्त 1984।

रजनी कोठारी एवं गिरि देशिंगकर, 'पंजाब : द लोंगर व्यू' **द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया,** 15-21 जुलाई 1984।

राकेश कुमार सिन्हा, 'पंजाब समस्या, अकाली और उग्रवादी दबाव', **सामयिक वार्ता,** मई, 1984।

राजेन्द्र राजन, 'राष्ट्रीय अखंडता का अखंड जाप : संवेदनशून्यता की त्रासदी', **सामयिक वार्ता,** जुलाई 1984।

शहनाज अंकलेसरिया, 'फाल-आउट आफ आर्मी एक्शन : ए फील्ड रिपोर्ट', **इकानामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली,** 28 जुलाई 1984।

सक्सेना (एन० एस०), 'अरबन गुरिल्ला कम्स टू इण्डिया', **द वीक।**

सक्सेना (एन० एस०), पंजाब ट्रेजेडी-I एवं II, इण्डियन एक्सप्रेस, 20-21 जुलाई 1984।

सच्चिदानन्द सिन्हा, 'पंजाब क्राइसिस : पोलिटिकल सोल्युशन इज द ओनली वे आउट', **समता एरा,** जुलाई 1984।

समता एरा संपादक मंडल, 'पजाब : ए विक्टिम आफ डर्टी गेम आफ देहली', **समता एरा,** जून 1984।

सामयिक वार्ता संपादकीय, 'सरकारी अफवाहों में पंजाब', **सामयिक वार्ता,** जुलाई 1984।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

सहाय '(एस०), ए व्हाइट पेपर देट हार्डली इन्फार्म्स', **स्टेट्समेन,** 13 जुलाई 1984।

हरकिशन सिंह सुरजीत, 'ट्रुथ्स फ्राम पंजाब', **इण्डियन एक्सप्रेस,** 18 जून 1984।

हरदेव सिंह, 'अफवाहों का कोहरा और सेंसरशिप', **रविवार** 5-11 अगस्त 1984।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

परिशिष्ट

आनंदपुर साहब प्रस्ताव

शिरोमणि अकाली दल की कार्यकारिणी ने 16-17 अक्तूबर 1973 को अपनी बैठक में दल की नयी नीति और कार्यक्रम का मसविदा पास किया, इस मसविदे को ही आनंदपुर साहब प्रस्ताव कहा जाता है। 5 वर्ष बाद 28-29 अक्तूबर 1978 को लुधियाना में अखिल भारतीय अकाली दल के 18वें सम्मेलन के खुले अधिवेशन में मूल आनन्दपुर साहब प्रस्ताव के आधार पर दल की मांगों के सम्बन्ध में 12 प्रस्ताव पास किये गये। इन प्रस्तावों के आधार पर ही अकाली दल ने अपना मौजूदा आंदोलन छेड़ा। यहां पर अकाली दल के अध्यक्ष संत हरचन्द सिंह लोंगोवाल द्वारा उन 12 प्रस्तावों का अधिप्रमाणित पाठ छापा जा रहा है (संपादक मण्डल)।

प्रस्ताव 1: शिरोमणि अकाली दल की मान्यता है कि भारत विभिन्न भाषाओं, धर्मों और संस्कृतियों की संघीय भौगोलिक इकाई है। धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यकों के गणतंत्रीय मूल अधिकारों की रक्षा के लिए, लोकतांत्रिक परम्पराओं की आवश्यकता पूरी करने के लिए और आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए यह जरूरी हो गया है कि भारतीय सांविधानिक ढांचे को सच्चा संघीय स्वरूप देने के लिए केन्द्र-राज्य सम्बन्धों एवं अधिकारों को इन उद्देश्यों तथा आदर्शों के अनुरूप पुनः निर्धारित किया जाए।

लोकनायक जयप्रकाश की सम्पूर्ण क्रांति का विचार भी सत्ता के उत्तरोत्तर विकेन्द्रीकरण पर ही आधारित है। कांग्रेसी शासन के दौरान बार-बार संविधान के संशोधन द्वारा राज्यों के अधिकारों के केन्द्रीकरण की प्रक्रिया की पराकाष्ठा एमर्जेन्सी के रूप में देश के सामने उस समय आई थी, जब सभी नागरिकों के सारे मूल अधिकारों को हड़प लिया गया। इसके बाद ही सत्ता के विकेन्द्रीकरण का कार्यक्रम जिसे शिरोमणि अकाली दल ने हमेशा माना है, जनता पार्टी, मा० क० पा० एवं अ० द्रमुक आदि राजनीतिक दलों द्वारा स्वीकार किया गया।

शिरोमणि अकाली दल इस सिद्धान्त पर हमेशा दृढ़ रहा है और इसीलिए

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

बहुत सोच-विचार कर अखिल भारतीय अकाली सम्मेलन, बटाला में और फिर आनन्दपुर साहब में सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें संघीय ढांचे के अन्तर्गत राज्य की स्वायत्तता की बात कही गई है।

अतः शिरोमणि अकाली दल जनता सरकार से इस बात के लिए जोर देता है कि वह विभिन्न भाषाई एवं सांस्कृतिक समूहों, धार्मिक अल्पसंख्यकों तथा अन्य करोड़ों लोगों की आवाज को सुने तथा देश के सांविधानिक ढांचे को सच्चे एवं अर्थपूर्ण संघीय सिद्धान्त के अनुरूप फिर से ढाले ताकि राष्ट्रीय एकता एवं देश की अखण्डता को कोई खतरा न रहे और राज्यों को अपने क्षेत्र में अपने अधिकारों के सार्थक उपयोग द्वारा भारतीय जन की प्रगति एवं समृद्धि के लिए उपयोगी भूमिका निभाने का मौका मिले।

प्रस्ताव 2 : शिरोमणि अकाली दल की यह ऐतिहासिक बैठक भारत सरकार से यह मांग करती है कि पिछली कांग्रेस सरकार द्वारा विशेषकर एमर्जेन्सी के दौरान की गई ज्यादतियों, गलतियों तथा गैर कानूनी कार्रवाइयों के बारे में ध्यान से सोच-विचार करे और निम्नलिखित समस्याओं का जल्द से जल्द हल ढूंढ़ने की कोशिश करे :

(क) चण्डीगढ़ को जिसका निर्माण मूलतः पंजाब की राजधानी के रूप में विकसित किया गया था, पंजाब को सौंप दिया जाए।

(ख) शिरोमणि अकाली दल की इस बहुत पुरानी मांग को माना जाए कि पंजाबी-भाषी इलाकों को पंजाब में मिला दिया जाए। इन इलाकों का निर्धारण भाषा-विशेषज्ञ गांव को इकाई मानकर करें।

(ग) 'हेड वर्क्स' का नियंत्रण पंजाब में ही बना रहे तथा जरूरत हो तो 'पुनर्गठन अधिनियम' को संशोधित किया जाए।

(घ) एमर्जेन्सी के दौरान श्रीमती गांधी ने राबी-व्यास के पानी के वितरण के सम्बन्ध में जो मनमाना एवं अन्यायपूर्ण निर्णय दिया था, उस पर पुनर्विचार हो तथा सर्वमान्य योग्यता सिद्धान्तों के अनुसार पंजाब के साथ न्याय किया जाय।

(ङ) सिखों की विशेष योग्यता और सैनिक गुणों को देखते हुए सेना में उनकी संख्या के वर्तमान अनुपात को बनाए रखा जाए।

(च) भूमि-सुधार के नाम पर, उत्तर प्रदेश के तराई इलाकों में बसने वालों पर की जा रही ज्यादतियों को समाप्त करने के लिए भूमि सीमा कानून में केन्द्र के निर्देश-सिद्धांतों के अनुसार संशोधन किया जाए।

प्रस्ताव 3 : आर्थिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव—शिरोमणि अकाली दल की आर्थिक नीतियों और कार्यक्रम के मुख्य प्रेरणा स्रोत श्री गुरु नानक देव तथा श्री गुरु गोविन्द सिंह जी के धर्मनिरपेक्ष, जनतांत्रिक एवं समाजवादी विचार हैं।

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

हमारे आर्थिक कार्यक्रम इन तीन मूल सिद्धान्तों पर आधारित हैं :

(क) श्रम की गरिमा।

(ख) एक ऐसा आर्थिक एवं सामाजिक ढांचा जिसमें समाज के गरीब एवं दलित तबकों का उत्थान हो सके।

(ग) पूंजीपतियों के हाथ में आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता के केन्द्रीकरण की अनवरत मुखालफत।

शिरोमणि अकाली दल ने अपने ऐतिहासिक आनन्दपुर प्रस्ताव में आर्थिक नीति के निर्धारण में भारत में कांग्रेस के तीस वर्षों के शासन द्वारा भारतीय अर्थ-व्यवस्था पर लादे गए पूंजीपतियों के आधिपत्य को समाप्त करने पर विशेष जोर दिया है। पूंजीपतियों के प्रभुत्व के कारण केन्द्रीय सरकार मुगलिया सल्तनत की तरह सारे अधिकार हड़पने में समर्थ हुई है। इसके कारण राज्यों के आर्थिक विकास में बाधा और लोगों के सामाजिक, आर्थिक हितों को चोट पहुंचाना लाजिमी था। शिरोमणि अकाली दल सिख जीवन पद्धति पर पुनः जोर देते हुए संकल्प करता है कि वह गुरु नानक देव की पवित्र वाणी को साकार करेगा। वही सत्य के मार्ग पर चलता है जो ईमानदारी से श्रम करता है और अपने श्रम के फल को दूसरों में बांटता है।

यह जीवन पद्धति इन तीन सिद्धांतों पर आधारित है—(क) ईमानदारी से श्रम करना (ख) श्रम के फल को बांटकर खाना, (ग) नाम जपना।

शिरोमणि अकाली दल केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों से अपील करता है कि वे अगले दस सालों में बेरोजगारी को खत्म करे। इस उद्देश्य को पूरा करने में कमजोर तबकों, अनुसूचित एवं दलित वर्गों, मजदूरों, भूमिहीनों और गरीब किसानों और शहरी गरीबों की हालत सुधारने पर विशेष ध्यान दिया जाये। इन सबके लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जाए।

शिरोमणि अकाली दल पंजाब सरकार से मांग करता है कि वह एक ऐसी आर्थिक योजना तैयार करे कि अगले दस सालों में वह एक अग्रणी राज्य बन जाए, प्रति व्यक्ति आमदनी 3000 रु० हो जाए और विकास की दर, राष्ट्रीय स्तर पर 4 प्रतिशत के मुकाबले 7 प्रतिशत हो जाए।

शिरोमणि अकाली दल ढांचे को इस प्रकार बदलने की मांग करता है कि करों का भार गरीबों से हटकर अमीर तबकों पर पड़े और राष्ट्रीय आय का समता-पूर्ण वितरण हो सके।

शिरोमणि अकाली दल के आर्थिक कार्यक्रम का मुख्य आधार समाज के आर्थिक रूप से कमजोर तबकों को राष्ट्रीय आय के फल में हिस्सेदारी करने लायक बनाना है।

शिरोमणि अकाली दल केन्द्रीय सरकार से अनुरोध करता है कि अमृतसर में

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

एक अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा बनाया जाए जिसमें थल बन्दरगाह की सुविधाएं भी हों। इसी प्रकार राज्य में औद्योगीकरण की प्रक्रियाओं और आर्थिक विकास को तेज करने के लिए लुधियाना में एक शेयर बाजार खुलना चाहिए। शिरोमणि अकाली दल यह भी चाहता है कि विदेशी मुद्रा विनिमय के नियमों में जरूरी संशोधन कर विदेशी मुद्रा के खले आदान-प्रदान की सुविधा देकर भारतीय प्रवासियों की कठिनाइयां कम की जाएं।

शिरोमणि अकाली दल भारत सरकार से जोर देकर आग्रह करता है कि कृषि उत्पादन और औद्योगिक कच्चे माल के मूल्यों में समानता लाई जाए ताकि जिन राज्यों में कच्चा माल नहीं है, उनके खिलाफ भेदभाव न हो।

शिरोमणि अकाली दल मांग करता है कि कपास, गन्ना और तिलहन आदि फसलों के उत्पादकों का व्यापारियों द्वारा शोषण तुरन्त बन्द हो तथा इसके लिए सरकार द्वारा इन फसलों की उचित दामों पर खरीद का प्रबन्ध किया जाये। कपास की कपास निगम द्वारा खरीद के लिए सरकार प्रभावी कदम उठाये।

शिरोमणि अकाली दल की समझ से देश के सामने सबसे ज्वलन्त राष्ट्रीय प्रश्न है अनुसूचित वर्गों के शोषित लोगों के हालात में सुधार लाना। शिरोमणि अकाली दल केन्द्र और राज्य सरकारों से अनुरोध करता है कि इस काम के लिए वे विशेष कोष की व्यवस्था करें। इसके साथ ही, राज्य सरकारें अपने बजट में अनुसूचित जाति के लोगों को शहरों और गांवों में मुफ्त आवासीय जमीन देने के लिए समुचित धन की व्यवस्था करें।

शिरोमणि अकाली दल कृषि को बहुमुखी बनाने की भी मांग करता है। भूमि-सुधार कानून की कमियों को दूर किया जाये, राज्य का तेजी से औद्योगीकरण हो, मध्यम श्रेणी के उद्योगों के लिए कर्ज की व्यवस्था बढ़ाई जाये और बेरोजगारों को बेरोजगारी भत्ता दिया जाये। खेती को लाभदायक बनाने के लिए खेती की मशीनों, ट्रैक्टर, ट्यूबवैल आदि तथा अन्य लागत की चीजों की कीमतों में ठोस रूप से कमी की जाये।

प्रस्ताव 4 : शिरोमणि अकाली दल की इस विशाल सभा को पंजाब के पड़ोसी राज्यों हिमाचल, हरियाणा, दिल्ली तथा जम्मू और कश्मीर राज्यों में पंजाबी भाषा के प्रति भेदभाव पर अफसोस है। उसकी यह दृढ़ मांग है कि 'नेहरू भाषा फार्मूला' के अनुसार पंजाब के पड़ोसी राज्यों में पंजाबी को द्वितीय राज्य-भाषा का दर्जा दिया जाना चाहिए, क्योंकि इन राज्यों का एक बड़ा हिस्सा पंजाबी-भाषी है।

प्रस्ताव 5 : इस बैठक को अफसोस है कि देश के विभाजन की वजह से जम्मू और कश्मीर में बस गये शरणार्थियों को उनके दावों के आधार पर अभी तक कोई मुआवजा नहीं मिला है और ये अभागे शरणार्थी अभी भी शिविरों में सड़

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

रहे हैं ।

अत: अकाली दल की यह बैठक जोर देकर मांग करती है कि उनके दावों का शीघ्र निपटारा किया जाये और उनके पुनर्वास की तुरन्त व्यवस्था की जाये, चाहे इसके लिए धारा 370 में संशोधन करना पड़े ।

प्रस्ताव 6 : अखिल भारतीय अकाली सम्मेलन की यह 18वीं बैठक, अन्य राज्यों में अल्पसंख्यकों के खिलाफ जिस तरह भेदभाव हो रहा है और उनके हितों की अवमानना हो रही है, उसके प्रति अपना रोष प्रकट करती है ।

सम्मेलन मांग करता है कि अन्य राज्यों में सिखों के खिलाफ अन्याय बन्द हो और उन्हें सरकारी नौकरियों, स्थानीय संस्थाओं, राज्य विधायिकाओं आदि में उचित प्रतिनिधित्व मिले, जरूरत हो तो उन्हें मनोनीत किया जाये ।

प्रस्ताव 7 : अखिल भारतीय अकाली सम्मेलन की यह 18वीं बैठक इस बात पर संतोष प्रकट करती है कि कृषि के यंत्रीकरण से खेतों की पैदावार बढ़ी है और देश आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहा है ।

परन्तु इसके साथ ही बैठक यह भी मानती है कि किसान यन्त्रीकरण का लाभ नहीं उठा पाते, क्योंकि इसकी लागत बहुत ज्यादा है ।

अत: शिरोमणि अकाली दल भारत सरकार को सुझाव देता है कि ट्रैक्टर से उत्पादन शुल्क हटा दिया जाये, ताकि दामों में कमी हो और सामान्य किसान भी कृषि मशीनों को प्राप्त कर सके और देश के कुल कृषि उत्पादन में योगदान कर सके ।

प्रस्ताव 8 : शिरोमणि अकाली दल की बैठक केन्द्रीय सरकार से अपील करती है कि वह गरीब और मजदूर वर्गों की ओर विशेष ध्यान दे तथा यह मांग करती है कि न्यूनतम मजदूरी कानून में उचित संशोधनों के साथ मजदूरों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए जरूरी कानूनी कदम उठाये जायें ताकि वे इज्जत से जिन्दगी व्यतीत कर सकें और देश के तेज औद्योगीकरण में सार्थक भूमिका निभा सकें।

प्रस्ताव 9 : यह बैठक भारत सरकार से अमृतसर के स्वर्ण मंदिर में एक रेडियो प्रसारण केन्द्र स्थापित करने की अनुमति चाहती है ताकि विदेशों में रहने वाले सिखों के आध्यात्मिक सन्तोष के लिए गुरुवाणी कीर्तन का प्रसारण किया जा सके ।

यह बैठक स्पष्ट करना चाहती है कि प्रसारण केन्द्र का पूरा खर्च खालसा पंथ उठाएगा और इसका नियंत्रण भारत सरकार के हाथ में होगा। आशा है, सरकार को इस मांग पर विचार करने के बाद इसे मानने में कोई हिचक नहीं होगी ।

प्रस्ताव 10 : शिरोमणि अकाली दल की यह विशाल सभा भारत सरकार से

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org

जोरदार मांग करती है कि कृषक वर्ग, जिसने राष्ट्र के व्यापक हितों के लिए निरन्तर मेहनत की है, के हित में कानूनों में निम्नलिखित संशोधन किये जायें :

(क) हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में समुचित संशोधन कर महिलाओं को पिता के बजाय ससुर की सम्पत्ति में उत्तराधिकार दिया जाये।

(ख) किसान की खेती की जमीन को सम्पत्ति (वैल्थ) कर सम्पदा (इस्टेट) कर से पूर्णतः मुक्त किया जाये।

प्रस्ताव 11 : शिरोमणि अकाली दल की यह विशाल सभा भारत सरकार से मांग करती है कि अनुसूचित तथा अन्य जातियों के पिछड़ेपन को देखते हुए, उनकी संख्या के अनुपात में, बजट में उनके कल्याण के लिए कोष की व्यवस्था होनी चाहिए। आरक्षण के आधार पर उन्हें न्याय दिलाने के लिए एक विशेष मंत्रालय की स्थापना की जानी चाहिए।

वह बैठक सरकार से मांग करती है कि पहले हुए समझौतों के अनुरूप सिख और हिन्दू हरिजनों के बीच, देश के किसी भी भाग में भेदभाव नहीं होना चाहिए।

प्रस्ताव 12 : कांग्रेस सरकार से मांग की जाती है कि रावी-व्यास जल वितरण के मामले में पंजाब के साथ हुए घोर अन्याय का निराकरण किया जाये। केन्द्र सरकार पंजाब में तुरन्त छः चीनी मिलों और चार कपड़ा मिलों की स्थापना की अनुमति दे, ताकि राज्य अपनी कृषि एवं औद्योगिक नीतियों को कार्यान्वित कर सके।

•••

Digitized by Panjab Digital Library | www.panjabdigilib.org